भारतके भाग्य-विधाता सीरीज़ नं० ३.

दादाभाई नौरोजी

(उनकी जीवनी, भाषण और लेख)

लेखक—

पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा ।

('मनोरञ्जन' सम्पादक, आरा)

"Mr. Naoroji has attained in the hearts of millons of his countrymen, without distinction of race or creed, a place which rulers of men might envy."

—The Late Hon'ble Mr. Gokhale

प्रकाशक—

हिन्दी-साहित्य-प्रचार-कार्य्यालय,

१६२-१६४ हरिसन रोड,

कलकत्ता ।

प्रकाशकः—
दीनानाथ सिगतिया,
हि० सा० प्र० का०,
१६२-१६४, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

प्रथम वार २०००, मई १९२३।

मुद्रकः—
मनमथ नाथ घोष,
"घोष-प्रेस"
३८, शिवनारायण दास लेन,
कलकत्ता।

भूमिका

आधुनिक भारतके राजनीतिक इतिहासमें मिस्टर दादाभाई नौरोजीको वही आसन प्राप्त है, जो महाभारतमें भीष्म पितामहका है। वास्तवमें जितनी लम्बी आयु तक आपने इस देशकी सेवा की, उतनी लम्बी आयु भोगनेका सौभाग्य आजतक हमारे देशके किसी नेताको नहीं प्राप्त हुआ। यौवनसे लेकर वृद्धावस्थामें जर्जर-शरीर होकर भी आप हमारे राजनीतिक क्षेत्रमें वीरकी तरह डटे रहे और अन्तिम सांस तक देशसेवाके कार्यसे अलग नहीं हुए।

भारतकी आर्थिक अवस्थाका जितना ज्ञान आपको था, उतना कदाचित ही किसी को रहा होगा। आपकी "भारतमें दरिद्रता" नामक पुस्तक भारतकी यथार्थ अवस्थाका वह चित्र जिसे देखकर उन अंगरेजोंकी आँखें भी शर्मसे नीची हो जाती हैं, जो मूछोंपर ताव देकर यह कहते फिरते हैं कि हमने हिन्दुस्तानको सुख और सौभाग्यका दान किया है। हिन्दुस्तानकी राजनीतिके सम्बन्धमें आपकी आकाँक्षा अतीव उन्नत थी और आपनेही पहले-पहल १९०६ ई० की कांग्रेसमें यह घोषणा की थी, कि वृटिश-साम्राज्यके अधीन औपनिवेशिक स्वराज्य

प्राप्त करनाही कांग्रेसका ध्येय है। आपने बीसियों वर्ष पहले जो सब राजनीतिक विचार प्रकट किये थे, वे आज भी वैसेही सत्य हैं, जैसे उस समय थे। भेद इतनाही है कि उस समय खुले कण्ठसे स्पष्ट बातें कहनेकी न तो लोगों को हिम्मत होती थी, न सर्वसाधारण उन बातोंका उचित मूल्यही समझते थे। परन्तु हाँ, यहतो मानना ही पड़ेगा, कि आपके ही विचारों और आकांक्षाओंने एक मुद्दत तक हमारे राजनीतिक मण्डलमें जीवनी-शक्ति भर रखी थी और कदाचित् मृत्युपर हमारा वश होता तो हम उनके जैसे प्रौढ़ विचार, प्रगाढ़ अनुभव और अपार दूरदर्शितावाले नेताको इस परिवर्तनके युग तक तो अवश्य ही जीवित रखते।

पर बड़े लोग मरा नहीं करते—वे सदा जीवित रहते हैं। आज दादाभाई नहीं हैं, परन्तु उनका आदर्श जीवन, अनुकरणीय देश-सेवा और अमूल्य उपदेश आज भी हमें अनुप्राणित कर रहे हैं।

हिन्दीमें दादाभाईकी कोई बड़ी सी जीवनी या उनके उपदेशोंका संग्रह अबतक नहीं प्रकाशित हुआ था, इसलिये हमने इकट्ठेही इन दोनों अभावोंकी पूर्तिका यह प्रयत्न किया है। बाबू महादेवप्रसादजी सेठकी प्रेरणासे ही हमने यह चरित्र लिखा है, नहीं तो सम्भव है, कि किसी अच्छे लेखक द्वारा यह लिखा जाता, तो और भी उत्तम पदार्थ पाठकोंको प्राप्त होता।

इस पुस्तकको लिखनेमें हमने मद्रासकी जी० ए० नटेसन एण्ड कम्पनी द्वारा प्रकाशित "दादाभाई नौरोजी" और "Speeches and Writings of Dadabhai Naoroji" नामक ग्रन्थोंसे पूरी सहायता ली है, एतदर्थ उक्त कम्पनीको बहुशःधन्यवाद है।

यदि पाठकोंने इसे पसंद किया और प्रकाशकोंका प्रेम हमारे प्रति आजहीकी तरह बना रहा, तो हम भविष्यमें इस मालाके लिये कुछ और नेताओंके भी जीवन-चरित लिखनेकी चेष्टा करेंगे।

आरा,
चैत्र कृष्ण १ सं० १९७८

निवेदक,
ईश्वरीप्रसाद शर्मा।

समर्पण

बाबू शुकदेव सिंह,

पुस्तकालयाध्यक्ष, नागरीप्रचारिणी सभा,

आरा।

मित्रवर!

जिन दिनों मैं दादाभाईकी यह जीवनी रोग-शय्यापर पड़े-पड़े लिख रहा था, उस समय संसारमें तुम्हारे सिवा मेरा कोई सहायक न था। तुम्हारी सेवा शुश्रूषा और सहायताके अभावमें मेरी मृत्यु हो जानी सम्भव थी और तब यह पुस्तक शायद ही मेरे हाथों पूरी हो पाती। उन्हीं स्मरणीय दिनोंकी स्मृतिको बनाये रखनेके लिये यह पुस्तक तुम्हींको समर्पित है। क्या यह तुच्छ भेंट स्वीकार करोगे?

तुम्हारा,

—ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा।

प्रेमोपहार

श्रीः।

दादाभाई नौरोजी।

उपोद्घात।

भारतवर्ष पराधीन देश है। इसे नाम-मात्रकी भी स्वाधीनता प्राप्त नहीं है। कहनेको तो बहुत कुछ कहा गया और समझनेको भी हम जबतक अनजान बने रहे, तब तक बहुत कुछ सोचते-समझते रहे; परन्तु ज्यों-ज्यों देशमें ज्ञानकी वृद्धि लगी, अपने-परायेकी पहचान होने लगी, त्यों-त्यों हमें अपनी विकट पराधीनता स्पष्ट झलकने लगी और प्राणोंके प्राण स्वाधीनताके लिये तड़प उठे। एक दिन था, जब हम भी स्वाधीन थे, पर जयचन्दकी करतूतोंने जिस पराधीनताको न्यौता देकर भारतके हरे-भरे आँगनमें पधराया, वह दिन-दिन उग्ररूप धारण करतीही चली गयी। क्रमसे हिन्दू-साम्राज्य लुप्त हुआ, हिन्दुओंकी एकता नष्ट हुई, मुसलमान बादशाहोंकी कभी अकबरशाही चमकी, तो कभी औरंगजेबशाही। किन्तु उस समय भी देश एकबारगी मर नहीं गया था। तबतक इसमें प्रताप और शिवाजी उत्पन्न होते रहे, जो हिन्दुओंकी फूटी आँखोंमें

डालकर यह दिखानेकी चेष्टा करते रहे कि तुम क्या थे और अब क्या हो गये हो? जब बड़ी बिगड़ी हुई होती है, तब कोई दवा काम नहीं करती। रोग बढ़ता ही जाता है।

८०० वर्षोंके लगभग मुसलमान यहाँके शासक रहे; पर उन्हें स्वाधीनचेता वीरोंसे लड़ते रहना पड़ा। खेद है, कि सभी मुसलमान शासक अकबरकेसे चतुर नहीं थे, नहीं तो कितनी नर बलि देकर जिस मुसल्मानी सल्तनतकी जड़ जमी थी, वह यों बालूकी भीतकी तरह मिट्टीमें न मिल जाती। हिन्दू अदूरदर्शी, प्रजापीड़क और अत्याचारी मुसल्मान शासकोंसे आरी आ गये थे और मुसल्मानोंके घरमें ही मीरजाफर और मीरकासिमकेसे जातिद्रोही विश्वासघातकोंकी बाढ़ होरहीं थी। इसलिये मुसल्मानी सल्तनतकी तबाही आ गयी। परन्तु हिन्दू फिर भी एक न हुए। इतने दिन पराधीनताकी बेड़ियोंसे जकड़ी हुई जातिमें फिर भी नव-जीवनकी ज्योति न जगी। इस बार हिन्दू और मुसल्मान दोनोंही गये—एक तीसरी जाति सात समुद्र तेरह नदी पारकर हमारे देशकी मालिकिन बन बैठी। हम हिन्दू और मुसल्मान दोनोंही उनके दास हुए और वे हमारे केवल बाहरके ही नहीं, भीतरके भी प्रभु बन बैठे।

कुछ दिन इस पराधीनताके हमने ख़ूब मज़े उड़ाये—बातें भी हमें ऐसी चिकनी चुपड़ी सुनाई गयीं, कि हमने सोचा, कि

हमारा देश हमसे छीना नहीं गया है; बल्कि इस उजड़े हुए चमनको फिरसे बसानेके लिये चतुर माली तैनात किये गए हैं, जो कुछ ही दिनोंमें इसे नन्दन वनका बड़ा भैया बना देंगें। अपना वेश, अपना भाव, अपनी भाषा—अपना सब कुछ भूलकर हम नये प्रभुओंकी रीति-नीति, रस्म-रिवाज़, भाव-भाषा और देश-वेशको जीसे चाहने लगे। हमने नयी सभ्यता सीखी, नयी विद्या पढ़ी, नयी दुनिया देखी। नया पनका वह अनोखा रंग चढ़ा, कि जो कुछ पुराना था, वह वह सब गंगा-गोदावरीके गर्भमें डूब गया।

परन्तु इस घोर अन्धकारमें भी कभी कभी प्रकाशकी रेखा दिखाई देती ही रही। स्वाधीनचेता पुरुषोंकी पैदायश एकबारगी बन्द नहीं हुई। यदा-कदा देशहितैषी सज्जन पैदा होकर देश-वासियोंको जगाने और इस अधःपतित दशासे ऊपर उठानेका प्रयत्न करते रहे। जो अंगरेजी शिक्षा प्रधानतः राज्यका कार-बार चलाने वाले चतुर सेवक तैयार करनेकेही उद्देश्यसे जारी की गयी थी, उसने अंरेज़ोंकी स्वाधीन चिन्ताका भी प्रचार करना आरम्भ किया और अंगरेज लोग जो भारतवासियोंके सब अधि-कार छीनकर भी अपने सुन्दर शासनकी आप बड़ाई करते हुए न थकते थे, उसकी निस्सारता धीरे-धीरे लोगोंपर प्रकट होने लगी। भारतीय शासनका सूत्र हाथमें लेते हुए महारानी विक्टो-

रियाने जो परम उदार घोषणा की थी, उसीके बल पर भारतके लोग भी अंगरेजोंके समान ही बृटिश प्रजा होनेका दावा करने लगे।

ऐसेही समय भारतमें इण्डियन-नेशनल-कांग्रेस स्थापित हुई, जिसके साथ पहले अङ्गरेज अधिकारियोंकी भी बड़ी सहानुभूति रही; पर ज्यों-ज्यों देशका राजनीतिक ज्ञान बढ़ने लगा और कांग्रेस प्रजामतका समर्थन करने लगी, त्यों-त्यों अधिकाकारियोंकी इसपरसे निगाह हटती चली गयी और आज तो उन लोगोंकी दृष्टिमें इस संस्थामें केवल झूठे, बकवादी और अक्लके दुश्मनही रह गये हैं!

वैसे ज़मानेमें, जबकि अंगरेज़ियतका जादू सबके सर पर चढ़कर बोल रहा था और स्वाधीनताकी एक बात भी मुँहसे निकालना बड़े जीवटका काम समझा जाता था, हमारे वर्तमान चरित नायक दादाभाई नौरोजीने भारतवर्षकी राजनीतिक उन्नति करनेका जो प्रयास किया था, उसका मूल्य हम आजकलके लोग क्या समझेंगे? अब तो, स्वराज्य-प्राप्ति हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, यह उक्ति हर गली-कूचेमें सुनाई पड़ रही है; पर उन दिनों हम भारतीय भी सभ्य मनुष्योंमें हैं—यही कहना बड़े भारी साहसकी बात थी!

उस युगके दादाभाई नौरोजीकी उपमा इस युगके किस

स्वदेश-प्रेमी महात्मासे नहीं दी जा सकती। सबसे पहले उन्होंने ही भारतको उसकी पतित अवस्थाका ज्ञान कराया, उसको दूरकरनेके लिये यहांसे विलायततक चेष्टा की और अपने दीर्घ जीवनकी अन्तिम सांसतक देशके कल्याणकी ही चिन्ता करते रहे।

आइये, पाठक! उस महान आत्माके जीवनके आरम्भसे ही आलोचना करके देखें, कि किन-किन सद्गुणोंने उसे इतना बड़ा बनाया था और किस तरह अपने जीवनको उसके अनुकरण पर चलाकर हम भी मातृ-भूमिकी कुछ सेवा करने योग्य हो सकते हैं।

जन्म और शिक्षा।

दादाभाई नौरोजीका जन्म ४ थी सितम्बर १८२५ को बम्बई नगरके एक पारसी-पुरोहित-परिवारमें हुआ था। जब ये चार वर्षके थे, तभी इनके पिताका शरीरान्त हो गया और इनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षाका भार एकमात्र इनकी माताके ऊपर आ पड़ा। पर वे वीर-माता थीं, अतएव इस संकटसे ज़रा भी न ऊबीं और अपने पुत्रकी शिक्षा-दीक्षाका उत्तम प्रबन्ध

करनेसे न चूकीं। इस काममें उनके भाई अर्थात् दादाभाईके मामाने उनकी बड़ी सहायता की और बम्बईमें उस समय जो सबसे अच्छा विद्यालय था, उसीमें उनकी पढ़ाई चलने लगी। कुछ दिनों बाद दादाभाई बम्बईके एल्फ़िन्स्टन इन्स्टिट्यूशनमें भर्ती हुए और क्रमशः अपनी प्रतिभासे विद्यालयके अधिकारियों और अध्यापकोंको आश्चर्यमें डालने लगे। ये अपने समयके बड़े ही तीव्रबुद्धि और मेधावी विद्यार्थियोंमें थे और पढ़ाई-लिखाईमें खूब होशियार होनेके कारण इन्हें बराबर ऊँचे दर्जेके के इनाम मिला करते थे। उन दिनों इनके समान चतुर प्रतिभाशाली और अध्ययनशील विद्यार्थी बम्बईके किसी विद्यालयमें नहीं था। कहावत है, कि होनहार पूतके पैर पलनेमें ही पहचाने जाते हैं। वही मसल यहां भी हुई। दादाभाईने लड़कपनमें ही अपनी प्रतिभाका वह चमत्कार दिखलाना आरम्भ किया, कि सब लोग आश्चर्यसे इनकी ओर देखने लगे। बम्बई भरमें इनकी अद्भुत प्रतिभाकी प्रशंसा सुनाई पड़ने लगी। भला जो प्रतिभा एक दिन समस्त भारतसे पूजी जानेवाली थी, वह बम्बई वालोंको क्यों न चौंका देती? जो संस्कारी आत्मा एक दिन राजनीतिक महर्षिके रूपमें देशके मुकुटकी तरह विराजमान होनेको थी, वह जीवनके प्रभातकालमें ही क्यों न अपनी तरूण-अरुण-प्रभासे अपने चारों ओरके मनुष्योंको मोहित कर डालती?

जो हो, १८४५ ई०में दादाभाईकी विद्या-शिक्षा सम्पूर्ण हो गयी और इन्होंने विद्यार्थि-मण्डलमें अच्छी कीर्ति लाभ की।

उन दिनों सर अर्सकिन पेरी बम्बईके चीफ जस्टिस थे। वेही उस प्रान्तके बोर्ड-आफ-एडुकेशनके (शिक्षा-विभागके) अध्यक्ष भी थे। उन्होंने दादाभाईकी बुद्धिमानी, विद्यानुशीलन, प्रतिभा और योग्यता आदिसे मुग्ध होकर उन्हें बैरिस्टरी पास करनेके लिये विलायत भेजना चाहा। इसके लिये उन्होंने प्रस्ताव किया, कि यदि दादाभाईके घरवाले आधा खर्च दें, तो बाकीका आधा खर्च मैं अपने पाससे दूंगा। परन्तु उनके घरवालोंकी हैसियत ऐसी न थी, जो वे उन्हें विलायतका खर्च दे सकते। दूसरे, पारसी जातिके लोगोंने भी इस काममें उनकी मदद देनी नहीं चाही, क्योंकि उन्हें इस बातका भय था, कि दादाभाई विलायत जाकर क्रिस्तान हो जायेंगे। पहले दो-तीन पारसी विलायत जाकर क्रिस्तान हो भी चुके थे, इसी लिये यह भय कुछ अकारण नहीं था। पारसी लोगोंने इसी कारण इस प्रस्तावकी ओर ध्यान नहीं दिया और पेरीका प्रस्ताव योंहीं रह गया। इसी समय बम्बई-गवर्नमेण्टके सेक्रेटेरियटमें एक क्लर्ककी जगह खाली हुई और दादाभाई उस जगह पर बहाल होकर जानेही वाले थे, कि एलफिन्स्टन इन्स्टिट्यूशनमें नेटिव हेड असिस्टेन्टकी जगह खाली हुई और

वे इसी पदपर नियुक्त हो गये। कुछ ही दिन बाद अर्थात् १८५० ई० में वे उसी विद्यालयमें गणितके सहकारी अध्यापक नियुक्त हुए। गणितके साथ ही साथ उन्हें प्राकृतिक दर्शन भी पढ़ाना पड़ता था। कुछही दिन बीतते न बीतते वे प्रधान अध्यापक बना दिये गये और १८५४ में इस पद पर स्थिर रूपसे प्रतिष्ठित कर दिये गये। यह उनके लिये बड़े ही गौरवकी बात हुई; क्यों कि उनसे पहले किसी देशी मनुष्यको यहाँके किसी कालेजमें प्रोफ़ेसरी करनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था। दादाभाईने अपनी अपूर्व योग्यतासे इस बातको सिद्ध कर दिखाया, कि इस देशके योग्य मनुष्योंको किसी उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित कर देने पर वे अपने किसी युरोपियन सहयोगीसे अल्प योग्यतावाले नहीं प्रमाणित हो सकते। परन्तु इस पद पर वे अधिक दिनतक न रह सके। उन्हें १८५६ में ही इस्तेफ़ा दे देना पड़ा, क्यों कि उन्होंने 'कामा एण्ड कम्पनी' नामक एक पारसियोंके कारबारमें साझा कर लिया था और उसके लिये एक मैनेजरकी आवश्यकता थी। यह कम्पनी हालहीमें विलायतमें खोली गयी थी, कम्पनीके सब डाइरेक्टरोंकी सलाहसे दादाभाई पर ही ,इसके प्रबन्धका भार सौंपा गया और उन्हें नौकरीसे इस्तीफ़ा दे कर विलायत चला जाना पड़ा।

वम्बईकी सार्वजनिक सेवाएं।

१८४५ ई० में पढ़ना छोड़नेके वादसे लेकर १८५६ में विद्यालयके लिये प्रस्थान करने तक उन्होंने बम्बईमें तरह-तरहके सार्वजनिक कार्य किये, जिनसे उनकी कार्य-कारिणी शक्ति और निःस्वार्थ प्रवृत्तिका पूरा पूरा पता चल जाता है। उन्होंने सबसे पहले प्रिन्सिपल पैटनकी सहायतासे (Students Library and Scientific Society) (विद्यार्थियोंकी साहित्यक एवं वैज्ञानिक समिति) स्थापित की, जो आज तक चल रही है। इसकी ओरसे एक मुखपत्र भी प्रकाशित होने लगा, जिसमें दादाभाई बड़े उत्साहसे लेखादि लिखने लगे। इस सोसाइटीकी जहाँ तहाँ शाखाएं भी खोली गयीं, जो ज्ञान-प्रसारक-मण्डली कहलाती थीं। इन मण्डलियोंमें गुजराती और मराठी भाषाओंमें व्याख्यान आदि देना सिखलाया जाता था। वे स्वयं भी गुजराती-ज्ञान-प्रसारक मण्डलीकी ओरसे कभी कभी व्याख्यान दिया करते थे। इन मण्डलियोंके द्वारा विद्यार्थी-समुदायको अच्छा लाभ पहुंचा।

सबसे पहले दादाभाईके ही उद्योग से वम्बईमें कन्या-पाठशालाएँ खुलीं। उन दिनों स्त्री-शिक्षाके नामसे ही लोगोंकी

नाक भौं चढ़ जाती थी और जो कोई इसका नाम लेता, उसपर फिटकार बरसने लगती थी। उपर्युक्त साहित्यिक एवं वैज्ञानिक समितिमें एक दिन बहरामजी गान्धी नामक सज्जनने स्त्री-शिक्षाके सम्बन्धमें एक बड़ाही प्रभावोत्पादक निबन्ध पढ़ा। उस दिनकी सभाके अध्यक्ष प्रोफेसर पैटन थे। उन्होंने भी समिति के सभासदोंसे इस विषयमें ज़ोर-शोरसे उद्योग करनेकी अपील की। फिर क्या था? कितने ही सभासद् इसके लिये कमर कसकर तैयार होगये और उन लोगोंने दादाभाईको मुखिया बना, बम्बईके भिन्न भिन्न मुहल्लोंमें छोटी-मोटी कई कन्या शालाएँ खोल दीं और आप ही अवकाशके अनुसार जा-जाकर पढ़ाने लगे। बढ़ते-बढ़ते ये छोटी-मोटी शालाएँ सोसाइटी की देखरेखमें चलनेवाले बड़े बड़े स्कूल बन गये, जिनमें मराठी और फारसी लड़कियाँ धड़ाकेसे शिक्षा पाने लगीं। मराठी स्कूल तो आजकल सोसाइटीकी ही देखरेखमें चलरही हैं, पर पारसी स्कूलोंकी देखरेखका भार "ज़रदस्ती पारसी गर्ल्स स्कूल ऐसोसियेशनने" अपने हाथमें ले लिया। इन स्कूलोमेंसे एकको दादाभाई के दाहिने हाथ मिस्टर एस० एस० बंगालीने बहुत कुछ दान देकर एक ऊंचे दर्जेकी शाला बना दिया है। ये पिछले सज्जन, दादाभाईके प्रायः सभी सामाजिक सुधारके कार्य्योंमें, इनका साथ देते थे। इन दोनों सज्ज-

नों ने पारसी समाजमें अनेक उल्लेखन योग्य सुधार किये थे। इसीलिये दादाभाईको बम्बईवाले स्त्री-शिक्षाका सर्व प्रथम प्रवर्त्तक मानते हैं। इसके सिवा बम्बई ऐसोलियेशन, फ्राम-जी इन्स्टिट्यूट, इरानी-फण्ड, पारसी जिमनैशियम, विडोमैरेज ऐसोसियेशन और विक्टोरिया ऐण्ड अलबर्ट म्यूजियम आदि संस्थाएं स्थापित करनेमें भी दादाभाईने बड़ा परिश्रम किया था और इन कार्य्योंके साथ इनका नाम सदाके लिये सम्बद्ध हो गया है। १८५१में उन्होंने "रास्त गुफ्तार" (सत्यवादी) नामका एक साप्ताहिक समाचारपत्र गुजरातीमें निकाला जोकि उनके और उनके मित्रोंके उन्नत विचारोंको प्रकट करनेवाला सबसे अच्छा साधन था। इस पत्रका उन्होंने दो वर्षतक बड़ी योग्यताके साथ सम्पादन किया था और इस काममें मिष्टर नौरोजी फ़रदूनजी, मि० जहाँगीर बरजोरजी वाचा और मि० एस० एस० बंगालीने आपको अच्छी सहायता की थी। इस प्रकार उनका यह कतिपय वर्ष-व्यापी जीवन नाना प्रकारकी सदिच्छा-प्रेरित सुन्दर कृत्तियोंमें लगा रहा और वे पीछे चलकर जब कभी अपने इन दिनोंकी याद करते थे तब प्रसन्नताके साथ कह उठते थे, कि परमेश्वरकी दयासेही मैं उस समय अपना कर्त्तव्य पालन कर सका था।

भारतीय और सिविल सर्विस।

जिस दिन दादाभाईने विलायतकी भूमिमें पैर रखा, उसके बादसेही उनका राजनीतिक जीवन आरम्भ हुआ, जो जीवनके अन्ततक एकसा जारी रहा। सबसे पहले उनका ध्यान इसी बातकी ओर आकृष्ट हुआ, कि भारतीय-सिविल-सर्विसमें देशी लोग भी अच्छी संख्यामें भर्ती हुआ करें। १८५५ में सरकार द्वारा निर्वाचनकी पद्धति उठाकर प्रतियोगितामूलक परीक्षाका नियम जारी किया गया था। पहली बारकी परीक्षामें मिस्टर आर० एच० वाडिया नामक एक प्रसिद्ध पारसी-परिवारके नवयुवक भी थे; परन्तु सिविल सर्विसके कमिश्नरोंने इन्हें परीक्षामें सम्मिलित करनेमें आपत्ति की। आपत्ति उमरके सम्बन्धमें थी; पर अबतक उमरकी कोई क़ैद नहीं बतलायी गयी थी, अतएव यह आपत्ति अनुचित थी। इसपर मिस्टर वाडिया और कमिश्नरोंमें ख़ूब लिखापढ़ी होने लगी। मिस्टर नौरोजीको जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने इस होनहार युवककी ओरसे लड़ना शुरू किया और मिस्टर जॉन ब्राइटकी सहायतासे वाडियाके लिये उमरवाली क़ैद हटवा देनेकी कोशिश करने लगे। पर इस चेष्टामें उन्हें विफल-मनोरथ होना

ा। इस विफलतासे वे समझ गये, कि जबतक भारतमें भी
ह परीक्षा नहीं ली जाने लगेगी, तबतक इस तरहका गोल-
ल होता ही रहेगा। अतएव वे इसी के लिये कोशिश करने
गे, कि जिस समय भारतीय-सिविल-सर्विसकी परीक्षा
लायतमें होती है, ठीक उसी समय यह परीक्षा भारतमें
ी ली जाया करे। उन्होने इस विषयमें इण्डिया-काउन्सिलके
दस्योंसे लिखापढ़ी करनी शुरू की और वहाँके चार मेम्बरों-
ो अपने मतका पोषक भी बना लिया; पर अधिकाँश उनके
िरोधी ही रहे। तोभी मिस्टर नौरोजीने अपना सङ्कल्प नहीं
छोड़ा और लगातार उद्योग तथा आन्दोलन करते ही रहे। अन्त
ं १८६३में हाउस-आफ-कामन्सने यह बात स्वीकार कर ली,
के भारतमें भी यह परीक्षा ली जानी चाहिये। परन्तु कोई
ात कहना और चीज़ है और करना कुछ और ही वस्तु है।
सीसे अबतक यह बात खटाईमें ही फूल रही है और समसा-
यिक परीक्षा आजतक जारी नहीं ही हुई। जोहो, अपने
सिद्धान्तकी उचितता तो मिस्टर नौरोजीने पार्लामेन्टसे
नवा ही ली।

बृटिश जनताको सन्देश।

इँग्लैण्डमें पहुंचतेही मि० नौरोजीने देखा, कि हिन्दुस्तानके
बारेमें यहां वालोंमें बड़ी अज्ञानता फैली हुई है। यहांके बहुत

से लोग यहभी नहीं जानते, कि हिन्दुस्तान कैसा देश है, वहाँ किस तरहके लोग बसते हैं, वहाँका शासन किस ढंगसे होता है और इससे वहाँके लोग सुखी हैं या दुःखी। मिस्टर नौरोजी ने सोचा, कि यदि इंगलैण्डवालोंकी यह अज्ञानता दूरकी जा सके, तो हमारे देशको बड़ा लाभ पहुंचे; क्योंकि जब ये लोग हमारा हाल अच्छी तरह जानेंगे, तभी हिन्दुस्तानके हर्ता-कर्ता होनेके कारण इनपर कितनी बड़ी जिम्मेदारी है, इस बातको समझ सकेंगे। इसी लिये उन्होंने स्वर्गीय मिस्टर उमेशचन्द्र बनर्जीकी सहायतासे लण्डन-ईण्डियन-सोसाइटी नामकी संस्था स्थापित की, जो तबतक चल रही है। इसके बादही उन्होंने ईस्ट इण्डिया ऐसोसियेशन नामकी एक बहुत बड़ी संस्था स्थापितकी, जिसके सभासद् केवल भारतीय नहीं, बल्कि वे लोग भी हो सकते थे, जिन्हें भारतके साथ सहानुभूति हो और इसकी भलाईका कुछ भी ध्यान हो। इस संस्थाको चलानेके लिये उन्होंने भारतवर्षके राजा-महाराजोंसे भी आर्थिक सहायता ली और इसे दृढ़ नींवपर स्थापित कर दिया। इसकी सहायता करनेवालोंमें बड़ौदेके गायकवाड़, इन्दौरके होल्कर, ग्वालियरके सिन्धिया और कच्छके रावसाहबके नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं। अपने जीवनके आरम्भिक दिनोंमें इस संस्थाने कितनेही लाभदायक कार्य्य किये और भारतीय प्रश्नों पर बड़ी ही गम्भीर

और प्रगतिशील विचार-परम्परा प्रकट की थी। उस समय इस की ओरसे जो मुखपत्र प्रकाशित होता था, उसके पुराने अङ्कोंमें भारतीय राजनीति और आर्थिक अवस्थाके सम्वन्धमें वड़े ही वहुमूल्य गवेषणामय निवन्ध प्रकाशित हुए थे। उस समयके वहुतसे पेन्शन प्राप्त गवर्नर, जैसे सर चार्ल्स ट्रिवेलियन और सर वार्टल फ्रेअर आदि और अनेक उदाराशय ऐंग्लोइण्डियन अफ़-सर भी इस संस्थामें आकर भाग लेते और निवन्ध आदि पढ़ा करते थे। मिस्टर डवल्यू० सी० वनर्जीने (उमेशचन्द्र वनर्जी) हिन्दू ला और सर फ़िरोज़शाह मेहताने शिक्षाके सम्वन्धमें वड़े ही उत्तम निवन्ध पढ़ सुनाये थे। मि० दादाभाईने तो न जाने कितने उत्तम निवन्ध पढ़े थे। स्वर्गीय मिस्टर रावर्ट नाइटने भारतीय आर्थिक अवस्था और अन्यान्य सुधारोंके विषयमें एक वार वड़ा ही गम्भीर निवन्ध पढ़ सुनाया था। स्वायत्त शासनके सम्वन्धमेंभी कितने ही अच्छे अच्छे निवन्ध पढ़े गये थे। उस दिनकी सभामें वम्वईकेप्रसिद्ध वैरिस्टर स्वर्गीय मिस्टर ऐनस्टेने भी भाग लिया था और इसके कामोंमें अपनी वड़ी दिलचस्पी दिखलायी थी।

इसके सिवा मिस्टर नौरोजीने इग्लैण्डके नाना स्थानोंमें घूम-घूमकर भारतीय प्रश्नोंके संवन्धमें ओजपूर्ण व्याख्यान दिये, विलायती अख़वारोंमें वरावर लेख लिखा किये, वहुतोंको वड़ी

बड़ी सभाओंमें जाकर हिन्दुस्तानके बारेमें व्याख्यान देनेके लिये उत्साहित किया और इस प्रकार विविध उपायों द्वारा अङ्गरेज़ोंके मनमें भारतीयोंकी ओरसे जो कुसंस्कार भरे हुए थे, उन्हें दूर करनेकी चेष्टा की। बहुतसे भारतीय प्रश्नोंको लेकर वे हिंदुस्तानके सेक्रेटरी-आफ-स्टेटसे भी अक्सर पत्रव्यवहार किया करते थे।

अर्थ-सङ्कट।

१८६२ ई० में मिस्टर नौरोजीने कामा एण्ड कम्पनीसे अलग होकर अपना एक पृथक् कारबार खोला; परन्तु १८६६ में अपने एक मित्रको बचानेके लिये वे खुद आफ़तमें जा फंसे। उनका कारबार चौपट होगया। पर उनकी साधुता, सच्चाई और व्यवहार कुशलताकी जो सर्वत्र प्रशंसा होचुकी थी, उससे उनका इस गाढ़े समयमें बड़ा उपकार हुआ। उन्होंने अपने महाजनोंके सन्मुख अपनी सारा बही-खाता खोलकर रख दिया और एक भी बात छिपाये बिना सब कुछ साफ़-साफ़ कह दिया। यह देख,सबने उनके साथ बड़ी सहानुभूति दिखायी और जहां तक बन पड़ा, रियायत भी की। बैंक-आफ़-इंग्लैण्डके गवर्नरने तो उन्हें उनकी तारीफ़ करते हुए एक पत्र भी व्यक्तिगतरूपसे लिखा था। अपने महाजनोंके इस सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार और कुछ मित्रोंकी आर्थिक सहायताके कारण वे इस सङ्कटसे उद्धार पाकर १८६६ में बम्बई चले आये।

वम्बईमें आकर।

अपने विलायत-प्रवासके अवसरमें मिस्टर नौरोजीने भारत-वर्षकी जो अमूल्य सेवाएं की थीं, उनके लिये उन्हें धन्यवाद देनेके निमित्त एक बहुत बड़ी सभा वम्बईके नागरिकोंकी ओर-से की गयी, जिसमें सभी श्रेणीके मनुष्य सम्मिलित हुए थे। इस सभाके प्रधान उद्योगी सर फ़िरोज़शाह मेहता थे। सभामें आपको मानपत्रके साथ-साथ एक थैली भी भेंट की गयी और आपका फ़ोटो लिया गया। इस थैलीको भी नौरोजीने स्वयं अपने काममें न लाकर सार्वजनिक कामोंमें ही खर्च कर दिया। इधर उनका बड़ासा तैलचित्र बनवानेके लिये जो फण्ड जमा हुआ, वह १६०० ई० के दिसम्बर तक जमाही रहा और उसका सूद बढ़ता रहा। अन्तमें १६०० ई० में फ़ोटो तैयार हो गया और फ्रामजी-कावसजी-इन्स्टिट्यूटमें उसका उद्घाटन-उत्सव स्वर्गीय मिस्टर रानाडेके सभापतित्वमें दिया गया। उस समय मिस्टर रानाडेने दादाभाईके गुणोंकी बड़ाई करते हुए एक बड़े ही मार्केकी और उपदेशमयी वक्तृता दी थी। खेद है, कि इसके बाद फिर कभी किसी सभामें बोलनेका अवसर मि० रानाडेको न मिला; क्यों कि इसके कुछ ही दिन बाद वे अचानक और असमय स्वर्गवासी होगये।

फ़ासेट-कमिटी।

कुछ ही दिन बाद मि० नौरोजी, पार्लामेण्टकी ओरसे स्थापित फासेट-कमिटीके सामने गवाही देनेके लिये फिर विलायत चले गये। यह कमिटी भारतीय आर्थिक प्रश्नों पर विचार करनेके लिये बैठी थी। मि० नौरोजीने कमिटीके सामने भारतवर्षकी भयङ्कर दरिद्रता और टैक्सोंकी भरमारका बड़ा ही हृदय-विदारक वर्णन अपनी गवाहीमें किया। सच पूछिये, तो इस विषयका आपने खूब अध्ययन भी किया था। जब उन्होंने अपनी गवाहीमें यह कहा, कि बृटिश-शासनाधीन भारतवासियोंकी औसत आमदनी २०) साल है, तब कुछ लोग तो हंस पड़े और कुछ ऐंग्लो-इन्डियन अफसर क्रोधसे अधीर हो उठे। बड़ी लेदे हुई; पर मि० नौरोजी अपने मत पर डटे रहे। १८७३ में उन्होंने अपने इस मतके समर्थनके लिये सभी तरहके आवश्यक आंकड़े वगैरह देकर एक छोटी सी पुस्तक निकाली, जिसका नाम "भारतमें दरिद्रता" रक्खा। सात वर्ष बाद, इसीको घटाबढ़ा कर उन्होंने "भारतकी दशा" नामक एक बड़ीसी पुस्तक निकाली। कई वर्ष बाद उन्हें यह देखकर सन्तोष हुआ, कि उनके मतको भारतीय गवर्नमेण्टके आर्थिक मन्त्री सर ई० बारिङ्ग (पीछे लार्ड क्रोमर) ने भी मान किया है और यह

स्वीकार करते हैं, कि भारतवर्षमें प्रत्येक मनुष्यकी औसत आमदनी केवल २७) सालाना है।

फासेट-कमिटीके सामने मि० नौरोजीने भारतीय शासनकी बहुतसी त्रुटियाँ दिखायीं और इसके बे-हिसाब खर्च और हिन्दुस्तानकी दौलतको इंग्लैण्ड खींच ले जानेकी नीतिका घोर विरोध किया। साथही यह भी कहा, कि शासन-सम्बन्धी बड़े-बड़े उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर हिन्दुस्तानियोंको न रखना, बड़े अन्यायकी बात है।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि उन्होंने कमिटीके सामने भारतवासियोंके हितका कोई प्रश्न उपस्थित करनेसे बाक़ी न रखा और जो कुछ कहा, वह युक्ति, तर्क और प्रमाणके साथ कहा।

बड़ौदेकी दीवानी।

इसके बादही मि० नौरोजी सन् १८७४ में बड़ौदेके दीवान नियुक्त होकर हिन्दुस्तान लौट आये। बड़ौदेके महाराज मल्हारराव गायकवाड़के कुशासनके कारण उन दिनों बड़ौदा-रियासतकी बड़ी ही दुर्दशा होरही थी। अतएव सारी गड़बड़ोंको दूरकर अच्छी तरहसे रियासतको चलाना कुछ हँसी-खेल नहीं था। यही नहीं, मि० नौरोजीको एक तरहसे गधेको घोड़ा बनानेका काम मिला था—ऐसा भी कहा जा सकता है।

उनकी कठिनाई ब्रिटिश रेज़िडेन्ट कर्नल फ़ेरीके निष्ठुर व्यवहार और रियासतके अफसरोंके दुराचारके कारण और भी बढ़ गयी। कुछ दिनों तक इन लोगोंने पहले की ही तरह पोल-पट्टी चलायी; परन्तु मि० नौरोजीने बम्बईसे कुछ सुयोग्य मनुष्योंको बुलाकर उन्हींकी सहायतासे सारी स्थितिको सुधारनेका क्रम जारी रखा और दो वर्षके भीतरही भीतर सारी बुराइयोंको दूर कर रियासतका शासनयन्त्र, जो बिलकुल ही बिगड़ गया था, दुरुस्त कर दिया। न्याय और शासन-विभागमें जो घोर अन्धाधुन्ध और घूसखोरी जारी थी, उसे उन्होंने एकबारगी बन्द करा दिया। कर्नल फ़ेरीके साथ इनका जो मतभेद था, उसमें भी इन्हींकी जीत रही; क्योंकि लार्ड सैलिसबरीने, जो उन दिनों भारतके स्टेट-सेक्रेटरी थे, कर्नल साहबके व्यवहारकी बड़ी निन्दा की और इस प्रकार दादाभाईकी सचाईका बोल बाला रहा।

बम्बइमें भिन्न-भिन्न कार्य।

बड़ौदेकी नौकरीसे इस्तीफ़ा देकर बम्बई चले आनेपर वे यहां कई सालतक म्युनिसिपल कार्पोरेशनके मेम्बर की हैसियतसे अपने नगरकी उन्नतिके कार्यमें लगे रहे। लार्ड लिटनकी दमन-मूलक और अत्याचारिणी नीतिसे निरुत्साहित होकर वे

कुछ दिनों तक एकबारगी एकान्त जीवन व्यतीत करते रहे। नये वायसरायके आते ही वे फिर सार्वजनिक कर्म-क्षेत्रमें उतर पड़े। वे एकबार फिर कार्पोरेशनमें सम्मिलित हुए और १८८५ तक उसमें रहे। इतने समयमें उन्होंने कार्पोरेशनकी जो बहुमूल्य सेवाकी थी, उसके लिये कार्पोरेशनने उन्हें बहुत धन्यवाद दिया और अपने रेकार्डोंमें उनकी बहुत बड़ाई लिखी। १८८५ में बम्बईके गवर्नर लार्ड रेने उन्हें बम्बईकी व्यवस्थापिका सभाका मेम्बर बनाया; पर वे बहुत दिनतक उसमें कार्य न कर सके; क्योंकि १८८६ में ही वे इंगलैण्ड चले गये। उनका उद्देश्य इस बार बृटिश पार्लामेन्टमें प्रवेश कर वहीं अपने देशके कल्याणके निमित्त प्रयत्न करनेका था। जानेके पहले उन्होंने बम्बईकी प्रथम काँग्रेसके लिये बहुत कुछ काम किया और उसकी सफलताका बहुत कुछ श्रेय आपको भी था। उसी साल काँग्रेसका जन्म हुआ था और बड़े दिनोंकी छुट्टियोंमें दादाभाईके पुराने साथी मि० डब्ल्यू० सी० बनर्जीके सभापतित्वमें उसका प्रथम अधिवेशन हुआ था।

पार्लामेन्टकी मेम्बरी।

जिस समय वे विलायत पहुँचे, उस समय वहाँ नये चुनावकी बड़ी धूम थी और यद्यपि 'हालबर्न' के मतदाताओंने (वोटरोंने)

उन्हें उदार-दलका एक उम्मेदवार मान लिया, तथापि वे न चुने जा सके; क्योंकि उन दिनों आयर्लैण्डको होमरूल देनेके पक्षमें होनेके कारण विलायतके सर्व-साधारणका मत उदार दलके मुखिया मि० ग्लैडस्टोनके विरुद्ध था और दुर्भाग्यवश मि० नौरोजी भी उदार दलवालोंकी ही ओरसे उम्मेदवार हुए थे। जो हो, एक 'काले' और 'उदार' उम्मेदवारको १९५० वोट मिले थे। इसेही बहुत बड़ी बात समझनी चाहिये। मेम्बर न चुने जानेसे भी मि० नौरोजीके हिम्मत न हारी और विलायतमें ही टिके रहे। उनका उद्देश्य वहीं रहकर और-और ढंगसे अपने देशकी सेवा करने और आगामी चुनावके अवसर पर राजधानी के किसी वार्डसे ही उम्मेदवार बननेका था। वर्षका अन्त होते-होते मि०;दादाभाईको हिन्दुस्तान लौट आना पड़ा; क्योंकि वे कलकत्तेमें होनेवाली दूसरी कांग्रेसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। १८८७ के जनवरी महीनेमें उन्होंने पबलिक-सर्विसेस- कमिशनके सामने एक बड़ी मार्केदार गवाही दी। यह कमिशनभी आपके ही आन्दोलनके फलस्वरूप बिठाया गया था।

इसके कुछही समय बाद वे फिर पार्लामेण्टकी मेम्बरीके लिये कोशिश करनेके लिये विलायत चले गये। पांच वर्षकी लगातार चेष्टाके बाद वे १८९२ ई० में सेन्ट्रल फ़िन्सबरीकी

ओरसे पार्लामेण्टके उदारदल-भुक्त मेम्बर चुने गये। इस अपूर्व सम्मानकी प्राप्तिके लिये सारे हिन्दुस्तानके लोगोंने आपको वधाईयाँ दीं और सच पूछिये, तो आपके चुनावने भारतीयोंके लिये मेम्बरीका मार्ग खोल दिया और कुछही :वर्ष वाद एक दूसरे पारसी सज्जन भी पार्लामेण्टके मेम्बर चुने जा सके।

पार्लामेण्टमें पहली वक्तृता।

६ वीं अगस्त १८९२ ई० को मि० नौरोजीने पार्लामेण्टके हाउस-आफ-कामन्समें पहली वक्तृता दी थी। उस समय पार्लामेण्टके सामने महारानी को अभिनन्दन पत्र देनेका प्रसंग उपस्थित था। वक्तृता बड़े मार्केकी है, इसी लिये हम उसे ज्योंकि त्यों नीचे प्रकाशित किये देते हैं। मि० नौरोजी ने कहा था—

"पार्लामेण्टमें प्रवेश प्राप्त करनेके वाद इतनी जल्दी कुछ कहनेके लिये खड़ा होना मेरे लिये बड़ी भारी धृष्टता और अदूरदर्शिताकी वात समझी जा सकती है, परन्तु मेरे इस उद्योगके कुछ प्रवल कारण हैं। विलायतकी जनताकी ओरसे पार्लामेण्टके सभ्योंमें मेरा चुनाव होनाही एक अपूर्व वात है; क्योंकि गत सौ वर्षोंके वृटिश शासनके इतिहासमें ऐसा कभी नहीं हुआ था, कि एक भारतीय विलायतकी जनताका प्रतिनिधि वनकर

पार्लामेण्टमें प्रवेश पा सका हो। यह बात न केवल भारतके ही इतिहासमें, बल्कि समस्त वृटिश-साम्राज्यके इतिहासमें, एक अपूर्व घटना है। इस सम्बन्धमें मुझे बहुतसी बातें खोलकर कहनी हैं। आरम्भसे ही वृटिश-साम्राज्यकी यह नीति रही है, कि भारतका शासन ठीक विलायतके ही ढंगपर स्वाधीनता और न्यायके साथ किया जाये। यही उदारता और न्याय-प्रियता बार-बार घोषित हुई है। इसी लिये हिन्दुस्तानमें पश्चिमीय ज्ञान, विज्ञान, सभ्यता और राजनीतिक संस्थाओंके प्रचारकी भी चेष्टा की गयी है। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतके नवयुवकोंमें एक नवीन राजनीतिक जीवनका सञ्चार हुआ है और जो राजनीतिक ज्ञान सदियोंसे मुर्दा हो रहा था, वह फिर जी उठा है। यहांके शासकोंने अपने देशको मिले हुए कितनेही अधिकार भी उस देशको दिलवाये हैं। महोदयों! आप लोगोंने कितना रक्तपात करके भाषणकी जो स्वतंत्रता प्राप्त की थी, वह आप लोगोंने भारतीयोंको योंही दे डाली है और आज उसीका यह प्रताप है; कि वे आपके सम्मुख अपनी समस्त आशा, अभिलाषा और आकांक्षाको स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट कर सुनाते हैं। उन्हीं सुविधाओंका यह फल है, जो आपलोगोंने भारतीयोंको दी है, कि आज आपके सामने एक भारतीय पार्लामेण्ट के मेम्बरकी हैसियतसे बोलनेको खड़ा हुआ है और निर्भय हो-

कर अपने विचार प्रकट करना चाहता है। इस महत्वपूर्ण घटनाका सारा श्रेय, समस्त गौरव आपको ही है। आपके ही इस उदार व्यवहारके कारण आज सारे भारतके लोग इस घटनाके ऊपर हार्दिक आनन्द और सन्तोष प्रकट कर रहे हैं और उनमें नूतन जीवनका सञ्चार हो आया है। यह अंग्रेज़-जातिकी स्वातंत्र्य-प्रियता और न्याय-निष्ठाका ही प्रताप है, कि आज आपलोगोंके सम्मुख एक भारतीय, आपकी भाषामें, अपने देशका दुखड़ा-दर्द सुनानेके लिये उठ खड़ा हुआ है। वह जानता है, कि यहाँ वह अकेला है; पर उसे विश्वास है, कि यदि वह अपनी बातोंको प्रबल युक्ति-तर्क और उचित प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर दिखायेगा, तो पार्लामेण्टके दोनों भवनोंके बहुतसे सभासद् उसका साथ देनेको तैयार हो जायंगे। उसे भरोसा है, कि आप लोग सदा न्यायका पक्षावलम्बन करते हैं। यही विश्वास हिन्दुस्तानके शिक्षित समुदाय और विचारशील सज्जनोंको भी है। उसी विश्वासके बलपर हम लोग प्रतिदिन किसी शिकायतको दूर करानेके लिये यत्न करते रहते हैं। निराश होनेपर भी आशा रखे रहते हैं। इस समय आप लोगोंके सामने जो प्रश्न उपस्थित है, वह कई बार क्रियात्मक रूपमें आप लोगोंके सम्मुख आयेगा और तभी मैं अपने विचार उक्त सम्बन्धमें प्रकट करूंगा, इस समय मैं उस

विषयमें कुछभी कहना नहीं चाहता। सेण्ट्रल फ़िन्सबरीने एक हिन्दुस्तानीको अपनी ओरसे पार्लामेण्टमें भेजकर सदाके लिये हिन्दुस्तानको कृतज्ञताके पाशमें बाँध लिया है और ब्रटिश साम्राज्यके इतिहासमें अपना नाम सदाके लिये अमर बना लिया है। हिन्दुस्तानी इसका नाम कभी न भूलेंगे। इस घटनाने भारतमें अंग्रेजोंकी शक्ति और इंगलैण्डमें भारतीयोंकी भक्तिको और भी दृढ़ कर दिया है। यह काम शायद वहां लाखों अंग्रेज़ सिपाही भेजनेपर भी नहीं हो सकता था। मि० डब्ल्यू० ई० ग्लैडस्टोनने ठीक कहा है, कि हिन्दुस्तानसे इंगलैण्डका सम्बन्ध नैतिक बलपर ही निर्भर है। जबतक हिन्दुस्तानियोंको अंग्रेज-जातिके न्याय और सम्मानका ध्यान बना रहेगा, तब-तक इसका प्रभुत्व भारतमें अचल होकर रहेगा। मुझे इस विषयमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यद्यपि हमारी उन्नति बहुतही धीरे-धीरे हो रही है और अकसर हमें अपनी मांगोंमें निराश होना पड़ता है, तथापि यदि हम लोग दृढ़ताके साथ कार्य्य करते जायंगे और बुद्धिमानी तथा विवेकके साथ अपनी मांगें पेश करते रहेंगे; तो हमारी मांगें पूरी कर दी जायेंगी। मुझे इतनी बातें कहनेका जो अवसर मिला, और लोगोंने जो ध्यानसे मेरी बातें सुनीं, उसके लिये मैं आपलोगोंको धन्यवाद देता हूं और आशा करता हूं, कि भारत और इंगलैण्डका

सम्बन्ध दीर्घकालतक स्थायी रहेगा और दोनों एक दूसरेको लाभ पहुंचाते रहेंगे। भारतीय शासनकी कितनी ही बातें मैं आपलोगोंके सम्मुख आगे चलकर उपस्थित करूंगा और मुझे पूरी आशा है, कि जब वे आपके सामने रखी जायेंगी, तब आप उन्हें ध्यानसे सुनें, समझें और विचारेंगे तथा हम लोगोंके सन्तोषके लिए उन्हें हलकरनेकी चेष्टा करेंगे।"

इस वक्तृताका पार्लामेण्टके अध्यक्ष और सभासदों पर अच्छा प्रभाव पड़ा था और सब लोगोंने इस नवीन भारतीय मेम्बरकी बड़ी प्रशंसा की थी।

पार्लामेण्टकी सेवाएं।

पार्लामेण्टकी मेम्बरी करते समय मि० नौरोजीकी सर्वप्रधान चेष्टा यही रहती थी, कि वे अँग्रेज़ मेम्बरोंके मनमें भारतीय प्रश्नोंके प्रति अनुराग उत्पन्न करें। इसी उद्देश्यकी अधिकाधिक सिद्धिके लिये उन्होंने विलियम वेडरवर्न और मि० डब्ल्यू० एस० केन की सहायतासे एक इण्डियन पार्लामेण्टरी कमिटी नामक संस्था स्थापित की, जिसने वर्षों तक भारतकी बहुमूल्य सेवाएं कीं। अपने मेम्बर चुने जानेके दूसरे ही वर्ष उन्होंने मि० हर्बर्ट पाल द्वारा वह स्मरणीय प्रस्ताव उपस्थित कराया, जिसमें सिविल-सर्विसकी परीक्षा भारतमें भी ली जानेका अनुरोध किया गया था। यद्यपि इस प्रस्तावका सरकारकी ओरसे

प्रबल विरोध किया गया, तथापि हाउस-आफ-कामन्सने इसे बहुमतसे स्वीकार कर ही लिया। इस सफलताका समस्त श्रेय मि० नौरोजीको ही था।

लाहौरकी नवीं कांग्रेस।

इसी सालके अन्तमें मि० नौरोजीको फिर भारत आना पड़ा, क्योंकि वे एक बार फिर इण्डियन नेशनल कांग्रेसके सभापति नियुक्त किये गये थे। यह अधिवेशन लाहौरमें होनेवाला था। जिस समय आप कांग्रेसके लिये बम्बईसे लाहौरकी ओर चले, उस समय जिस धूमधामके साथ आपका प्रत्येक स्टेशनपर स्वागत किया गया, वह किसी राजा-महाराजको भी शायद ही नसीब होती है। लाहौरसे लौटते समय तो प्रयाग-निवासियोंने आपको वहाँ उतार ही लिया और बड़े आदरसे एक अभिनन्दन पत्र आपके अर्पण किया। अस्तु।

लाहौरमें मि० नौरोजीका स्वागत बड़ो ही अपूर्व रीतिसे हुआ। आपके गाड़ी पर सवार होते ही उत्साही नवयुवकोंने उसके घोड़े खोल दिये और आपही उनकी सवारी खींच ले चले। इस अपूर्व उत्साहमय स्वागतका संवाद जब विलायत पहुंचा, तब वहाँके समाचार-पत्रोंने इस पर बड़ा ही आनन्द प्रकट किया और भारतके सच्चे बन्धु सर विलियम हंटरने

"टाइम्स" में अपने विचार इस प्रकार उत्साहमय वाक्योंमें प्रकट किये थे:—

"इस वर्ष हिन्दुस्तानकी काँग्रेसके सभापतिका जैसा अभूतपूर्व स्वागत हुआ हैं, वह देखकर सबको आश्चर्य-संयुक्त आनन्द हुए बिना नहीं रह सकता। मि० नौरोजी न केवल पहले ऐसे भारतीय हैं, जो पार्लामेन्टके मेम्बर चुने गये हों वलिक आरम्भसे ही उनका जीवन बड़ाही अद्भुत रहा है। उनका मध्यजीवन नाना प्रकारके सङ्कटोंके बीच व्यतीत हुआ है और उत्तरजीवनमें उन्होंने अपनी अनेक उच्चाभिलाषाओंको सफल कर दिखाया है। एलफिन्स्टन कालेजका वह तेज़ विद्यार्थी और प्रसिद्ध प्रोफेसर, जिसने १८५५ में बम्बई छोड़, इंग्लैण्डमें अपने भाग्यकी परीक्षा करनी चाही थी, वही गत मासमें ६८ वर्षकी पक्की आयु और एक बहुत बड़ी पारिवारिक विपत्तिके बोझसे झुका हुआ, जनताकी आराधनाका भाजन बना है। लाहौरमें उनका जो स्वागत हुआ है वह शायद ही कभी किसी वायसरायको नसीब हुआ हो। रणजीतसिंहके बाद शायद आपका ही इस धूमधामसे लाहौरमें स्वागत हुआ है। हाउस-आफ-कामन्स और भारतीय व्यवस्थापिका सभाओं पर इस समय कांग्रेस-पार्टीका जो प्रभाव पड़ रहा है, उसको बुद्धिमानीके साथ स्थिर रखना और काँग्रेसको ठीक-ठिकाने के साथ ले चलना ही इस

समय आपका और आपके मित्रोंका कर्त्तव्य होना चाहिये।"

उपर्युक्त टिप्पणीमें मि० नौरोजीकी जिस पारिवारिक विपत्तिकी बात कही गयी है वह उनके एक मात्र पुत्र के देहावसानको लक्ष्यकर कही गयी है। उसी साल उनके एकलौते-पुत्र की मृत्यु हुई थी।

वेल्बी-कमिशनके सामने गवाही देना।

मि० नौरोजीके पार्लामेण्टमें रहनेका जो सबसे बड़ा और अच्छा फल निकला, वह यही था, कि १८६६ ई० में भारतीय आय-व्ययके सम्बन्धमें जांच करनेके लिये एक राजकीय कमिशन बैठाया गया, जिसके वे भी एक मेम्बर थे। उनकेदो अन्य साथी सर विलियम वेडरबर्न और मि० डबल्यू० एस० केन थे। इसके अध्यक्ष लार्ड वेल्वी थे, इसी लिये यह वेल्वी कमिशनके नामसे प्रसिद्ध है। सन् १८६७में मि० नौरोजीने स्वयं भी इस कमिशनके सामने गवाही दी थी, जिससे यह बात स्पष्ट विदित हो गयी, कि भारतीय राजनीतिक और अर्थ-समस्याके समस्त गूढ़ विषयोंका उन्हें कैसा गम्भीर ज्ञान था। हम नीचे उनके वक्तव्यों-का संक्षिप्त परिचय पाठकोंको उन्हींके शब्दोंमें दे देना चाहते हैं। उन्होंने जो कुछ उक्त कमिशनके सामने कहा था, उसका सारांश स्वयं इस प्रकार लिख रखा था:—

"मैंने कमिशनके सामने छः छपे हुए बयान पेश किये हैं। मैंने उनमें वे सब बातें, आंकड़े और प्रमाण लिख दिये हैं, जिन-पर मेरा पूर्ण विश्वास है और जिनके विषयमें मैं सौ-सौ तरहसे जिरह करने की लोगोंको चुनौती देता हूं।

"मेरी गवाही तीन शीर्षकोंमें विभक्त है:—(१) व्ययका नियंत्रण (२) खर्चका बँटवारा (३) व्यावहारिक प्रतिकार। मैं इन तीनों ही विषयोंके सम्बन्धमें अपने पूर्ण विवेचनाके साथ स्थिर किये हुए सिद्धान्तोंको एक-एक करके व्यौरेवार समझाने को तैयार हूं और भारतकी ओरसे पैरवी करने को मुस्तैद हूं।

"मेरे विचारसे १८३३ के कानूनमें जो प्रतिज्ञाएं की गयी थीं और जिनका समर्थन महारानी विक्टोरियाने अपनी १८५८ वाली घोषणामें किया था, उनके अनुसार भारतवासियोंको सभी छोटी बड़ी नौकरियों और सेनामें कमिशन आदि मिलनेका तथा आय-व्ययके बारेमें मत देनेका पूरा अधिकार है। ऐसा होनेसे उनके सुख और सौभाग्यकी वृद्धि हो सकती है, शासन भी अच्छी तरहसे हो सकता है और यहांवालोंकी वृटिश-राज्य-पर बड़ी भक्ति हो सकती है, जिससे अंग्रेजोंको भी सुख होगा।

"मेरे खयालसे हिन्दुस्तानके शासनका जो व्यय है, उसका

बँटवारा ऊपर बतलायी हुई नीतिके अनुसार नहीं होता, जिससे यहांके लोगोंमें दरिद्रता और चरित्र-हीनताका प्रचार हो रहा है। वृटिश-शासनकी सबसे बड़ी खराबी तो यही है, कि ये अंगरेज़ यहांकी आर्थिक, राजनीतिक और मानसिक सम्पत्ति का शोषण कर लेते हैं। इतनी दूरसे आकर ये लोग यहांसे माल ढोले जाना न चाहें, यही ताज्जुबकी बात है; पर जैसी प्रतिज्ञाएं की गयी हैं और जैसी उदार नीतिकी घोषणा की गयी है, उसके यह बिल्कुल विरूद्ध है।

"अपने बयानोंमें मैंने हिन्दुस्तानकी दरिद्रताका भली भांति विवेचन किया है और व्ययका मिलान कर, प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी निकाल कर, व्यापारके आंकड़ोंकी जाँचकर, सब तरहके टैक्सोंके अतिरिक्त जो थोड़ी बहुत मालगुजारी वसूल होती है, उसका विचार कर, सब बातोंको आईनेकी तरह झलका देनेकी कोशिश की है।

"मेरी यह दृढ़ धारणा है, कि अंगरेजों द्वारा शासित भारतमें जो दिन-दिन दरिद्रता और अवनतिका दौर-दौरा हो रहा है, उसका कारण यह है, कि बाहरसे बड़ी मोटी-मोटी तनख्वाहों वाले अफसर बुलाये जाते हैं और विलायती व्यापारको उत्तेजन दिया जाता है, जो कि साधारण प्रजाकी शक्तिसे बाहर है। इस प्रकार वृटिश-साम्राज्यके अधीन भारतका आर्थिक, राजनी-

तिक और मानसिक ह्रास हो रहा है। इतनेपर भी इसकी सीमासे बाहरके युद्धोंका ख़र्चा भी इसीसे वसूल किया जाता है। सच पूछो तो इस विदेशी पराधीनताने विदेशी व्यापारियोंके निजी फायदेके सौ रास्ते खोल दिये हैं और वे लोग यहांके कच्चे मालोंका सारा फायदा अकेले उठाते रहते हैं।

"इसलिये मेरी राय है, कि—

"वृटिश प्रजाजनोंकी यह इच्छा है, कि वृटिश-शासन न्याय और धर्मकी नींवपर क़ायम होना चाहिए, जिससे हिन्दुस्तान और विलायत, दोनोंको लाभ पहुंचे। ऐसा नहीं, कि भारतीयोंका गला घोंटकर केवल अँगरेजोंको ही लाभ पहुंचाया जाये। हिन्दुस्तानकी सारी आयका बँटवारा इस प्रकार अँगरेज़ों और हिन्दुस्तानियोंके बीच होना चाहिए, जैसा मालिक और ग़ुलामके बीच हुआ करता है।

"इसी समानताके सिद्धान्तके अनुसार कुल आय-व्ययका बँटवारा करना उचित है; क्योंकि इसमें हिन्दुस्तान और विलायत, दोनोंका एकसा स्वार्थ है। साथही यहांके लोग कहांतक टैक्स देनेकी शक्ति रखते हैं, उसका भी विचार करना होगा।"

"हिन्दुस्तानमें अंगरेज़ी साम्राज्यकी जड़ जमी रहे, इसमें सबसे बड़ा स्वार्थ इङ्गलैण्डका है, तो भी कुछ बातोंको छोड़, अन्य सभी विषयोंमें हिन्दुस्तानको ही इस साम्राज्य-रक्षाके लिये भी

कुल खर्च देना पड़ता है और विलायती सरकार कौड़ी भी नहीं खर्च करती। यह बहुत ही बुरा है, कि इतनेपर भी इस साम्राज्यकी अभिवृद्धिके जो सुन्दर फल हैं, वे हिन्दुस्तानियोंको नसीब नहीं होते।

"हिन्दुस्तानमें विधि और व्यवस्था स्थिर रहे, इसके लिये प्रबन्ध और व्यय करना भी अंगरेज़ोंका ही काम है; क्यों कि ऐसा हुए विना उनकी सलतनत क़ायम ही नहीं रह सकती। हां, यह मैं मानता हूं, कि इससे भारतको भी बहुत कुछ लाभ पहुंचता है।

"कहते हैं, कि भारतको अपनी अन्तर्वाह्य रक्षाके लिये कुल ख़र्च देना ही चाहिये; क्यों कि यदि अंगरेज़ी राज्य न भी रहता, तो भी इसके लिये तो ख़र्च करना ही पड़ता। यह माना, पर यह जो बड़े-बड़े वेतनवाले साहब सातसमुद्र पारसे यहाँ महज़ अंगरेज़ी सलतनतको मजबूत बनानेके लिये बुलाये जाते हैं, उनका तो कुल ख़र्च विलायतकी सरकारको ही देना चाहिये। अगर अंगरेज़ी सलतनत यहाँ न रहे, तो फिर युरोपियन अफ़सरोंको यहाँ क्यों रक्खा जायेगा? तब तो हिन्दुस्तानी ही हिन्दुस्तानी सब जगह दिखाई देने लगेंगे।

"मेरे ख़यालसे, व्यवहारकी बात तो यह है, कि जितने अंगरेज़ यहां नौकर होकर आयें, उनका ख़र्च विलायत दे और जित-

ने हिन्दुस्तानी विलायतमें नौकर होकर जायें, उनका ख़र्च यहाँसे भेजा जाये, और दोनों देशोंकी शक्ति सामर्थ्य देखकर ही ख़र्च बाँधा जाये; क्यों कि नियम तो यही कहता है, कि हिन्दुस्तानमें हिन्दुस्तानी और विलायतमें अंगरेज़ नौकर रहने चाहियें तथा उनका व्यय-भार वहींका वहीं सम्हाला जाना चाहिये। यदि इस नियममें रियायत करनी हो, तो इतनी ही रियायत की जासकती है, कि दोनों देशोंके युरोपियन नौकरोंका ख़र्च भारत और इङ्गलैण्डको आधा आधा बर्दास्त करना चाहिये।

"जल और स्थल सेनामें तथा अन्य छोटे-बड़े सरकारी पदों पर न्यायके साथ बराबर देशी-विदेशी सज्जनोंकी नियुक्ति होनी चाहिये। यह बात स्मरण रखनी चाहिये, कि हिन्दुस्तानमें नौकरी ही बहुतोंका आधार है; क्यों कि विलायतके लोगोंको बहुतसे व्यापार-धन्धे तथा स्वतन्त्र व्यवसाय करनेकी सुविधाएं प्राप्त हैं और यहांवालोंको यह सब कुछ भी नहीं है।"

"१८५८ में हिन्दुस्तानकी सीमासे बाहर जो युद्ध हुए, वे वृटिश-साम्राज्यके हितकी ही दृष्टिसे लड़े गये थे, जैसा कि लार्ड सैलिसबरीने कहा भी है; अतएव उनका अधिकांश व्यय विलायतके ख़ज़ानेसे दिया जाना चाहिये। और चूंकि उन युद्धों से भारतको भी आनुषङ्गिक एवं अप्रत्यक्ष लाभ पहुंचा है, अतएव कुछ थोड़ासा हिस्सा इसे भी दे देना चाहिये।"

"१८८२ के अप्रैल महीनेसे लेकर १८६१ के मार्च महीने तक हिन्दुस्तानके ख़ज़ानेसे तेरह करोड़ नब्बे लाख रुपये पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्तोंके लिये ख़र्च किये गये, जिससे साम्राज्यका ही हितसाधन हुआ। इस लिये वह रुपया हमें विलायतके ख़जानेसे वापिस मिलना चाहिये। यही बात बर्मा-युद्धके ख़र्चके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है।"

"बयान दे चुकनेके बाद मुझे कुछ और भी आंकड़े मिले हैं, जिनसे हिन्दुस्तानके ख़ज़ानेसे और भी जो कितनी ही रक़में सैनिक कार्य्योंमें व्यय की गयीं हैं, उनका पता चलता है। कर्नल एच० बी० हन्नाने अपनी आगे या पीछे नामक पुस्तकके तीसरे भागके ४० वें पेजमें लिखा है, कि अफग़ान-युद्धमें कुल ७, १४, ५००, ०००) रुपये ख़र्च हुए थे, जिनमें विलायतकी सरकारने केवल ७५, ०००, ०००) रुपये ही दिये थे। साथही आपने लिखा है, कि कितनी ही रकमें तो छूट गयी हैं, जिनका पता नहीं लग सका।.........

"मैं तो डिउक आफ़ डेवनशायरकी इसी नीतिको मानताहूं, कि यदि इस देशका और भी अच्छी तरहसे शासन करना है, तो देशी आदमियोंमें से अच्छे-अच्छे बुद्धिमानोंको चुनकर नियुक्त करना चाहिये। सर विलियम हण्टर भी कहते हैं, कि अगर हमें आसानीसे और साथही कम दाममें भारतका सुन्दर शासन

करना हो, तो हमें सब नौकरोंको देशी नौकर की तनख्वाहके हिसाबसे ही तनख्वाह देनी चाहिये। अगर इस नीतिपर शासन होने लगे, तो हिन्दुस्तानके कच्चे माल, राजनीतिक अधिकार और बुद्धिकी जो लूट मची हुई है, वह बन्द हो जायेगी।"

"मैसूर रियासतमें लार्ड सैलिसबरी और लार्ड इडेसले यही नीति काममें लाये थे। यद्यपि इस बातको ऐंग्लो-इण्डियनोंने पसन्द नहीं किया, तो भी उक्त दोनों लार्डोंने इसकी परीक्षा की और इसे सफल कर दिखाया। इसका परिणाम यह हुआ, कि लोग सुखी और सन्तुष्ट हो गये, ख़ज़ानेमें रुपया भर गया, लोगोंकी नैतिक और साम्पत्तिक उन्नति हो गयी और अंगरेज़ोंकी प्रभुतासे ऊब नहीं पैदा होने लगी। यह घटना हिन्दुस्तामें अंगरेज़ी सलतनतके इतिहासका एक उज्ज्वल प्रकरण है।

"यदि वृटिश भारतमें भी यही नीति काममें लायी जाये, तो यहाँके लोग भी सुखी और सन्तुष्ट हो जायेंगे। यदि प्रान्तीय या स्थानीय शासनका भार सुयोग्य देशी सज्जनोंपर देदिया जाये और ऊपरसे युरोपियनोंकी सहायता मिलती रहे तथा प्रजाके प्रतिनिधियोंके मण्डल सहायक-रूपसे कार्य करते रहे, तो इसका परिणाम अत्यन्त शुभ हो।

"अँगरेज़ी राज्यसे हम लोगोंकी बड़ी भलाई हुई है, यह बात

में सहर्ष स्वीकार करता हूँ। खासकर विधि, व्यवस्था, शि
समाचारपत्रोंकी स्वाधीनता और सर्व-साधारणको सभा
करनेका अधिकार देकर इसने हम लोगोंका बड़ा उपक
किया है; परन्तु जहाँतक मेरा विश्वास है, वृटिश प्रभाव औ
प्रतिपत्तिको इस बातसे बड़ा धक्का पहुंचा है, कि उन्हें अप
आमद-खर्चके बारेमें मुंह खोलने नहीं दिया जाता, न्याय
साथ खर्च नहीं किया जाता, जिससे सर्वसाधारण दिन-दि
दरिद्र होते चले जाते हैं। पार्लामेन्ट और सिंहासनकी ओर
जो समय-समयपर उदार घोषणाएँ हुई हैं, उनका ठीक-ठी
पालन नहीं होनेसे नौकरियोंके दिये जानेमें काले-गोरेक
जो भेद रखा जाता है, उससे भी साम्राज्यकी ही हानि होती
है। अतएव मेरी यह हार्दिक इच्छा है, कि वृटिश-शासन ऐसे
अच्छे ढंगसे हो, कि उससे भारत और वृटेन दोनोंको ही लाभ
पहुंचे।

"मैं इस सम्बन्धमें अपना विचार युद्ध-विभाग, नौ-विभाग
और सिविल-सर्विस कमिश्नरोंको भी बतला देना चाहता हूं।
मेरी यह पक्की राय है, कि युद्ध या नौविभागको हिन्दुस्तानियों
को कमिशन न देनेका कोई अधिकार नहीं था।"

ऊपरके अवतरणोंसे पाठकोंको भलीभाँति मालूम हो गया
होगा, कि आज जिन बातोंको कहने या जैसी मांगें पेश करने-

के लिये लोग 'गरमदलवाले' कहलाने लगते हैं और जिनके कारण नरमदलवाले उनसे बचकर रहते तथा सरकार-की हाँमें हाँ मिलानेमें ही देशके कल्याणका मार्ग देखते हैं, वही बातें आजसे प्रायः पचीस वर्ष पहले मि० नौरोजीने भी उक्त कमिशनके सामने प्रकट की थीं; किन्तु भेद इतनाही है, कि आज सर्वसाधारण भी इन महत्त्वके प्रश्नोंको जानने और समझने लगे हैं और कोरे ज़बानी वायदोंसे लोग बेतरह ऊब गये हैं। इसीसे जिन बातोंके कहने के लिये पहले किसी तर-हका दण्ड नहीं दिया जाता था, उन बातोंके मुंहसे निकाल-तेही अब दफ़ा १२४ (ए) लगा दी जाती है। अस्तु, जो हो, मि० दादाभाईको भारतकी अवस्थाका यथार्थ ज्ञान था; वे यहां-के मध्यवित्त तथा साधारण श्रेणीवालोंके दुःखदर्दको समझते थे, इसी लिये उन्होंने अपने दीन-हीन देशका पक्षावलम्बन, जभी मौक़ा पाया, तभी बड़े ज़ोरोंके साथ किया।

पार्लामेंटकी मेम्बरीमें गड़बड़।

१८९५ में उदारदलवालोंको इस्तेफ़ा देना पड़ा और दूसरे सार्वजनिक चुनावमें अनुदारदलवालोंकी बन आयी। उदार दलकी विफलताके कारण ही मि० नौरोजीको भी इस बार नि-राश होना पड़ा; क्योंकि ये उदार-दलके साथ अपना नाता जोड़

चुके थे। परन्तु इससे उनका जोश कम न हुआ और उन्होंने "इण्डिया" नामक समाचारपत्र द्वारा यह सन्देसा अपने देशवासियोंके पास भेजा :—

"मैं प्रायः पचास वर्ष तक भिन्न-भिन्न प्रकारके सार्वजनिक और व्यक्तिगत कार्योंमें लिप्त रहा। इतनेमें मैंने न जाने कितने राजनीतिक, सामाजिक, व्यापारिक, और शिक्षा तथा शासन-सम्बन्धी कार्य किये और उनमें प्रत्येक मनुष्यके भाग्यमें जैसा हुआ करता है, वैसेही कभी सफलता हुई, तो कभी विफलता। परन्तु हिम्मत हार जाना मैंने आजतक सीखाही नहीं। जैसे समस्त उदार ख्यालोंको इस बारके चुनावमें हार खानी पड़ी है, वैसे मुझे भी हारना पड़ा; क्योंकि मैं भी तो उन्हींके साथ था परन्तु मैं जिस प्रकार आजतक धैर्य और अध्यवसायके साथ कार्य करता रहा और कभी सफलता या विफलताकी परवा नहीं की है, वैसेही अब भी अपने कर्त्तव्य-पालनमें लगा रहूँगा। जबतक मेरा स्वास्थ्य जवाब नहीं देता, तबतक अपने देशकी सेवा करनेका कोई मौक़ा मैं अपने हाथसे न जाने दूंगा। यही मेरे जीवनका अन्तिम ध्येय है और मैं इसे कभी छोड़ना नहीं चाहता। इसी लिये मेरी इच्छा है, कि फिर हाउस-आफ-कामन्समें प्रवेश करनेकी चेष्टा करूँ; क्योंकि भारतके दुखोंको दूर करने और इसके शासनमें

सुधार आदि करानेके लिये यहीं लड़ाई लड़नी होगी। हिन्दुस्तान की भलाईसे ही अँगरेज़ी सलतनतकी भलाई है। केवल भारतके स्वार्थों की अपेक्षा भारतकी समस्याएँ अधिक महत्त्व रखती हैं; क्योंकि इन्हींके हल होनेपर बृटिश-साम्राज्यकी स्थिति, उन्नति और समृद्धि निर्भर है। चूंकि इस विषयपर मैं अनेक बार अपने विचार प्रकट कर चुका हूं और अभी अवसर मिलने पर और भी न जाने कितनी बार प्रकट करूँगा इसीलिये मैं यहाँ कुछ भी कहना नहीं चाहता—सिर्फ इतनाही कह देना चाहता हूँ, कि हिन्दुस्तानमें बड़ी व्यापक और बलवती शक्तियाँ काम कर रही हैं और दिन-दिन उनका प्रभाव बढ़ता जा रहा है। यदि वर्त्तमान समयके राजनीतिक पुरुषगण साम्राज्यके हित की ओर अपनी दृष्टि न करेंगे और प्रजामें सुख और समृद्धिकी वृद्धि करनेका प्रयत्न न करेंगे तो ये शक्तियाँ किसी दिन अँगरेज़ी सलतनत के खिलाफ़ उठ खड़ी होंगी और इसका परिणाम बड़ाही भयङ्कर होगा। एक साधारण मनुष्यकी शक्ति जहाँतक काम कर सकती है, वहांतक मैंने वह दुर्दिन न आने देनेकी सदैव चेष्टाकी है। मेरे देशभाईयोंको मेरी इस हारसे निराश न होना चाहिये। हिन्दुस्तानके विषयमें अब यहाँकी अँगरेज़ी प्रजा एकदम उदासीन नहीं है, बल्कि उसके मामलोंमें बड़ी दिलचस्पी रखने लगी है। मुझे इस बातका पूरा भरोसा

है, कि यह दिन शीघ्रही आनेको है, जब यहांके लोग यह बात अच्छी तरह समझ जायेंगे कि उनका सच्चा स्वार्थ इसीमें है, कि हिन्दुस्तानके लोग सुखी और सन्तुष्ट रहें। थोड़े दिनमें वे ज़रूर यह बात समझने लगेंगे, कि वर्त्तमान अस्वाभाविक नीति अच्छी नहीं है ; क्योंकि यह दिन दिन भारतके लोगोंको असन्तुष्ट और दरीद्र बनाती चली जाती है।" जो हो, उनके मेम्बर न चुने जानेसे भारतवर्षमें बड़ी निराशा छा गयी और लोगोंने इसे देशके लिये हानिकर माना। उनकी इस हारके बारेमें "टाइमस्स-आफ्-इण्डियाने" लिखा था,—"हमें बड़े दुःखके साथ लिखना पड़ता है, कि दादाभाईकी हारने इस देशके उनके मित्रोंके मनमें बड़ी निराशा और असन्तोष पैदा कर दिया है। यद्यपि वे प्रायः ऐसे विचार प्रकट किया करते थे, जिनके साथ हमारा कभी ऐकमत्य हो ही नहीं सकता; क्योंकि वे बृटिश-शासनको ऐसी दृष्टिसे देखते थे, जैसी दृष्टिसे कोई इस देशकी आवश्यकताओं और स्थितिका जाननेवाला नहीं देख सकता; तथापि उनके कट्टरसे कट्टर शत्रुओंको भी यह बात स्वीकार करनी ही पड़ती है, कि वे जो कुछ कहते थे, वह निस्स्वार्थ भावसे, आत्माकी प्रेरणासे और ईमानदारी तथा सचाईके साथ।"

१८८७ में हिन्दुस्तान छोड़कर विलायत जानेके बादसे वे

१९०६ तक विलायतमें ही रहे; क्योंकि वहां उन्होंने अपना घरसा बना लिया था। परन्तु अपनी जन्मभूमिको वे कभी न भूले और न उसकी सेवा करनेका कोई अवसर ही हाथसे जाने दिया। १९०६ में उन्होंने "युद्ध-विभागसे" और "नौ-विभागसे" पत्र व्यवहार कर यह बात अधिकारियोंको जंचानी चाही, कि सेना और नौ-सेनासे हिन्दुस्तानियोंको अलग छांटना बड़ाही अनुचित और महारानी विक्टोरियाकी १८५८ और १८८७ वाली घोषणाओंके विरुद्ध है। परन्तु उनका सारा लिखना पढ़ना बेकार हुआ, किसीने इस ओर ध्यान न दिया। हाँ, इतनी बात तो साबित हो ही गयी, कि यह नीति बड़ी ही अनुदारताके साथ काममें लायी जारही है। १८९३ में उन्होंने वेल्बी-कमिशनके सामने जो मार्केकी गवाही दी थी, उसका हाल पहले लिखा ही जा चुका है।

करेंसी-कमिटी

सन् १८९८ में सर हेनरी फ़ाउलरकी अध्यक्षतामें जो इण्डियन करेंसी-कमिटी बैठी थी, उसको आपने दो बयान लिखकर दिए थे, जिनमें प्रस्तावित सोनेके सिक्केके सम्बन्धमें आपने अपने विचार प्रकट किए थे। आपने यह बात अपने बयानमें अच्छी तरह प्रमाणित कर दिखलायी, कि टकसालोंको बन्दकर

रुपयेका भाव ११ पेंस से बढ़ाकर पूरे १६ पेंस कर देने से हिन्दुस्तानके लोगोंका वैसा कुछ लाभ नहीं है। मान लिजिये, कि एक आदमीको अपनी जमीनके लिये १०) टैक्स देना पड़ता है। इस समय १)रु० ११ पेंसका है, पर पीछे १६ पेंसका नक़ली रुपया चला देने से उस बेचारेको जबर्दस्ती कुछ ज़ियादा रकम देनी पड़ जायेगी। इसका मतलब यह है, कि इस नकली सिक्के के लिये उसे अपनी फसलका फी सैकड़े ४५ मंस बेंच देना पड़ेगा, अर्थात् गवर्नमेन्ट मुफ्तमें ही इतनी रकम और हड़प लेगी। इसके सिवा और भी कई रीतियोंसे हिन्दुस्तानके टैक्स देनेवालोंको इस सोनेका मूल्य-निर्द्धारण करनेकी नीति से हानि उठानी पड़ेगी। यह जो कहा जाता है, कि इससे हिन्दुस्तानियोंको लाभ होगा, वह महज़ कल्पना है।

इन बयानोंका कमिटी पर अच्छा प्रभाव पड़ा, इसमें सन्देह नहीं।

ग्रंथ-प्रणयन।

सन् १६०२ में मि० नौरोजीने अपनी वह प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशितकी, जिसका नाम Poverty and Un-British rule in India (अर्थात् भारतमें दरिद्रता और अंगरेजोंका निज-नीति विरोधी शासन) है। इस पुस्तकमें आपने अपने उन भिन्न भिन्न लेखोंको, जो समय समयपर विविध पत्रोंमें प्रकाशित

हुए थे, उन बयानोंको जो आपने समय-समयपर भिन्न-भिन्न कमिटियों तथा कमिशनोंके सामने पेश किए थे और उन पत्रोंको जो आपने बड़े-बड़े पदाधिकारियोंको भारतीय प्रश्नोंके सम्बन्धमें लिखे थे, इकट्ठा करके छपवा दिया था। खेदकी बात है, कि मि० नौरोजी बुढ़ापे के कारण अपने उन लेखोंको दुहरा न सके और उनमें और भी अधिक प्रमाणोंको न जोड़ सके। पुस्तक बहुत बड़ी है और इसी लिये सर्वसाधारण उसे साद्यन्त पढ़ जानेका कष्ट शायद ही उठाते हैं। अच्छा हो, यदि उन लेखोंको संक्षिप्त रूपसे लिखकर अब भी उनका प्रचार किया जाये। जो हो, यह पुस्तक भारतकी साम्पत्तिक अवस्थाको प्रकट करने वाली अपने ढंगकी अद्वितीय रचना है और भारतीय समस्याओंसे परिचित करानेके लिये अपूर्व साधन है। सारे ग्रंथमें मि० नौरोजीने यही दिखानेकी चेष्टा की है, कि भारतकी बढ़ती हुई दरिद्रताका कारण यही है, कि प्रति वर्ष यहांसे ४५ करोड़ रुपयेकी खिंचाई हो रही है और उसके बदलेमें यहांवालोंको ढेला भी नहीं मिलता। इसका मूल कारण वर्तमान शासन-नीति है और यह अवस्था तबतक दूर नहीं हो सकती, जबतक मोटी तनख्वाहवाले युरोपियनोंके स्थानमें भारीतयोंकी ही भरती न हो और यहांका धन बाहरवाले लूटकर न ले जाने पायें।

रुपयेका भाव ११ पेंस से बढ़ाकर पूरे १६ पेंस कर देनेसे हिन्दुस्तानके लोगोंका वैसा कुछ लाभ नहीं है। मान लिजिये, कि एक आदमीको अपनी जमीनके लिये १७) टैक्स देना पड़ता है। इस समय १)रु० ११ पेंसका है, पर पीछे १६ पेंसका नक़ली रुपया चला देनेसे उस बेचारेको जबर्दस्ती कुछ ज़ियादा रकम देनी पड़ जायेगी। इसका मतलब यह है, कि इस नकली सिक्केके लिये उसे अपनी फसलका फी सैकड़े ४५ अंस बेच देना पड़ेगा, अर्थात् गवर्नमेन्ट मुफ्तमें ही इतनी रकम और हड़प लेगी। इसके सिवा और भी कई रीतियोंसे हिन्दुस्तानके टैक्स देनेवालोंको इस सोनेका मूल्य-निर्द्धारण करनेकी नीतिसे हानि उठानी पड़ेगी। यह जो कहा जाता है, कि इससे हिन्दुस्तानियोंको लाभ होगा, यह महज़ कल्पना है।

इन बयानोंका कमिटी पर अच्छा प्रभाव पड़ा, इसमें सन्देह नहीं।

ग्रंथ-प्रणयन।

सन् १९०२ में मि० नौरोजीने अपनी वह प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशितकी, जिसका नाम Poverty and Un-British rule in India (अर्थात् भारतमें दरिद्रता और अंगरेजोंका निज-नीति विरोधी शासन) है। इस पुस्तकमें आपने अपने उन भिन्न भिन्न लेखोंको, जो समय समयपर विविध पत्रोंमें प्रकाशित

हुए थे, उन बयानोंको जो आपने समय-समयपर भिन्न-भिन्न कमिटियों तथा कमिशनोंके सामने पेश किए थे और उन पत्रों को जो आपने बड़े-बड़े पदाधिकारियोंको भारतीय प्रश्नोंके सम्बन्धमें लिखे थे, इकट्ठा करके छपवा दिया था। खेदकी बात है, कि मि० नौरोजी बुढ़ापे के कारण अपने उन लेखोंको दुहरा न सके और उनमें और भी अधिक प्रमाणोंको न जोड़ सके। पुस्तक बहुत बड़ी है ओर इसी लिये सर्वसाधारण उसे साद्यन्त पढ़ जानेका कष्ट शायद ही उठाते हैं। अच्छा हो, यदि उन लेखोंको संक्षिप्त रूपसे लिखकर अब भी उनका प्रचार किया जाये। जो हो, यह पुस्तक भारतकी साम्पत्तिक अवस्थाको प्रकट करने वाली अपने ढंगकी अद्वितीय रचना है और भारतीय समस्याओंसे परिचित करानेके लिये अपूर्व साधन है। सारे ग्रंथमें मि० नौरोजीने यही दिखानेकी चेष्टा की है, कि भारतकी बढ़ती हुई दरिद्रताका कारण यही है, कि प्रति वर्ष यहांसे ४५ करोड़ रुपयेकी खिंचाई हो रही है और उसके बदलेमें यहांवालोंको ढेला भी नहीं मिलता। इसका मूल कारण वर्तमान शासन-नीति है और यह अवस्था तबतक दूर नहीं हो सकती, जबतक मोटी तनख्वाहवाले युरोपियनोंके स्थानमें भारतीयोंकी ही भरती न हो और यहांका धन बाहरवाले लूटकर न ले जाने पायें।

उक्त ग्रन्थका सारांश।

कुछ वर्ष हुए, मि० नौरोजीने पेरिसके एक समाचारपत्रके प्रतिनिधिको नीचे लिखा हुआ बयान लिखकर दिया था, जो एक प्रकारसे उनके उक्त ग्रन्थमें लिखे हुए राजनीतिक विचारोंका सार-सङ्कलन है। पाठकोंको रुचिकर होगा, यही समझकर हम उसे ज्योंका त्यों प्रकाशित करते हैं :—

"भारतकी वर्त्तमान साम्पत्तिक एवं भौतिक अवस्थाका विवेचन करनेसे तो यही सिद्धान्त निकलता है, कि इसका इङ्गलैण्डके साथ नाता जुड़ना, इसके लिये, बड़ा ही अमंगल-जनक और भयानक दुःखदायी हुआ है। एक ओर तो यह सबसे बड़ा लाभ है, जो हिन्दुस्तानको इंग्लैण्डकी बदौलत हुआ है और वह है, अंगरेज़ी शिक्षा। इसके लिये हिन्दुस्तानी अवश्यही इंग्लैण्डके कृतज्ञ हैं; किन्तु दूसरे इतने बड़े-बड़े अपकार भी किये गये हैं, कि उपकारकी तो बात ही उनके सामने नहीं टिकने पाती। जिस समय शुरू-शुरू हमारा इंग्लैण्डके साथ सम्बन्ध हुआ, उसी समयसे अत्याचार, अन्याय और दुर्नीतिका व्यवहार जारी हुआ। जब इनका दौर-दौरा कुछ कम हुआ, तब यहांकी दौलतका खींचा जाना बेहिसाब बढ़ गया। आजतक यह खींचा-खींच जारी है। पहले जहाँ दस बीस लाख रुपये सालाना जाते थे,

वहां आज ४५ करोड़ सालानाका खिंचाव हो रहा है। डेढ़-सौ वर्षोंके वृटिश-शासनका यही नतीजा निकला। इतनी बड़ी रक़म हर साल देनी पड़े, तो भला कौनसा देश है, जो दरिद्रता और सर्वनाशका शिकार न हो जाये? सच पूछिये तो भारतीयों पर ये कई तरहके पाप लदे हुए हैं। पहले इंग्लैण्डसे ही शुरु कीजिये। प्रतिवर्ष २० करोड़ रुपये तो युरोपियनोंकी तनख्वाहमें चले जाते हैं। वेचारे भारतीय कृषक अपने जीवनकी आवश्य-कताओंको पूरी करनेके अतिरिक्त विदेशियोंकी भी आवश्यक-ताएं पूरी करते हैं। इसके सिवा अपनेही देशमें उन्हे बड़े-बड़े पद मिलने दुर्लभ हैं। मोटी तनख्वाहवाले पदोंतक उनकी पहुं-च ही नहीं होने पाती। इस नीतिके फलसे उन्हें न तो अच्छी तनख्वाह मिलती है, न अच्छे-अच्छे कार्योंका अनुभव प्राप्तहोता है। इसे विदेशी आक्रमणका नित्य बढ़नेवाला कुफल नहीं तो और क्या कह सकते हैं? इधर इंग्लैण्डसे हजारों आदमी हिन्दुस्तानमें धन कमानेको भेजे जाते हैं, जो अपनी कमाईका एक धेला भी भारतवर्षको नहीं देते, बल्कि जो कुछ कमाते हैं, सब वहीं ले जाते हैं। इसीकायह नतीजा है, कि वेचारा हिन्दुस्तान दिन दिन दरिद्रताकी चक्कीमें पिसा चला जाता है। लाखों आदमी अकाल और महामारीके शिकार हो रहें हैं और असंख्य मनुष्योंको भरपेट भोजन,

दुर्लभ हो रहा है। अकालका कारण यह नहीं है, कि यहां अन्न कम उपजता है, बल्कि यह है, कि यहाँकी प्रजा बेहद ग़रीब हो गयी है और भोजनकी वस्तुएं ख़रीदने योग्य पैसेकी मुहताज हो रही है। अंगरेज़ोंकी शासन-नीति इस भयङ्कर दशाको दिन-दिन बढ़ाती चली जाती है। हिन्दुस्तानसे जो रुपया विलायत जाता है, वह अंगरेजी कम्पनियोंके मूलधनके रूपमें भारतमें आता है; पर जितना आता है, उससे कई गुना फिर चला जाता है। कहनेको तो यह पूंजी अंगरेज़ोंकी है, पर सच पूछिये, तो यह हमारी ही गाढ़े पसीनेकी कमाई है। ये व्यापारी हमारा ही धन लगाकर हमारे देशकी खनिज सम्पत्ति —सोना, लोहा, कोयला और अन्य वस्तुएं —लूट रहे हैं और देशका ख़ून चूसते चले जाते हैं। तनख्वाहों और इन व्यापारियों की इस लूटसे हिन्दुस्तानका कई करोड़ रुपिया प्रतिवर्ष विलायत चला जाता है, जिससे हिन्दुस्तान आज दरिद्रताकी अन्तिम सीढ़ी पर पहुंच गया है। पहलेके सब आक्रमणकारी हम पर चढ़ाई करके इतना धन नहीं लूट पाये थे, जितना ये अंगरेज़ दोही तीन वर्षोंमें हंसते-हंसते हमसे छीन लेते हैं। इंग्लैण्डने आजतक अपनी एक भी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की और यद्यपि उसने यह कह कर यहांका शासन-सूत्र अपने हाथमें लिया था, कि काले और गोरेका भेद-भाव न रक्खा जायेगा, तोभी हम देखते-

है, कि यह भेद-भाव बेहद बढ़ा हुआ है। इतनी लम्बी-चौड़ी आशाएँ देते रहने पर भी आजतक हमें वृटिश प्रजाका वह प्राथमिक अधिकार नहीं दिया गया, जिसके अनुसार प्रजाकी इच्छाके विरुद्ध न तो टैक्स लगाये जा सकते हैं, न सरकार द्वारा इकट्ठा किया हुआ धन ही खर्च किया जा सकता है। यह तो पूरी निरंकुशता है, कि जब जितना चाहा, कर लगा दिया और उसे जिस तरहसे चाहा, खर्च किया। भारतके अधिवासी मानों सभी गुलाम हैं और अपने प्रभुओंकी इच्छामें जरा भी बाधा नहीं डाल सकते। दुःख तो इस बातका है, कि हम अपने देशके मालिक नहीं हैं—हमारे प्रभू विदेशी हैं और जो कुछ धन वे यहाँसे पाते हैं, सब विलायतको ले जाते हैं। अगर देशी शासक होते, तो किसी न किसी रूपमें उनका धन देशवालोंकी जेबमें पहुंचता ही। यही इस अंगरेज़ी सलतनतकी सबसे बड़ी बुराई है और इससे हमारा अवर्णनीय अपकार हुआ है। मैकाले ठीक-ही कहतेथे, कि विदेशी शासनका जुआ बड़ा बुरा होता है। बहुतसे अंगरेज़ राजनीतिकोंका यह ख़याल है, कि इस नीतिसे स्वयं इंग्लैण्डकी भी बड़ी बुराई हो रही है। जिस वृटिश-शासनका इतनी प्रशंसा की जाती है, वह साफ़-साफ़ खून चूस रहा है और सच पूछिये, तो यह नीति प्रतिज्ञाभङ्गके उपर निर्भर है, जैसा कि स्वयं लार्ड सैलिस्बरीको भी स्वीकार करना पड़ा था।

वृटिश राज्यकी ओर मि० नौरोजीका भाव।

वृटिश- शासनकी ओर मि० नौरोजीके मनमें कैसे भा थे, यह उनकी पुस्तककी इस भूमिकासे ही प्रकट हो जाते हैं:—

"इस पुस्तकका नाम "भारतमें दरिद्रिता और वृटिश विरोधी शासन" है, जिसका मतलब यह है, कि वर्तमान शासन-नीति बड़ीही नाशकारक और निरङ्कुश है, जिससे न केवल हिन्दुस्तानकीही, वल्कि इंगलैण्डकी भी हानि है। अंगरेजोंके लिये यह नीति आत्मघातक है। अगर भारतमें सचमुच सच्चे अंगरेज़ी भावोंके अनुसार शासन होने लगे, तो यह दोनों देशोंके लिये मङ्गलकारी होगा।

"सच्ची वृटिश-नीतिसे भारत और इंग्लैण्ड, दोनोंका भला होगा। यह सारी कलम-घिसाई इसीलिये की गयी है, जिसमें इंगलैण्डके लोग यह जान जायें, कि बेईमानकी तरह हिन्दुस्तानकी सम्पत्ति लूटनेकी जो असम्मान-जनक पद्धति सम्प्रति प्रचलित है; उससे किसी दिन बड़ी भारी विपत्ति आ सकती है; परन्तु यदि ठीक वृटिश-भावोंके अनुसार भारतका शासन हो, अंगरेज अपने जाति-स्वभावके अनुसार न्याय और समानताका व्यवहार करने लगें, जो पवित्र और महान् प्रतिज्ञाएं

हिन्दुस्तानके साथ समय-समयपर की गयी हैं, उनका पूर्णतया पालन किये जाने पर जोर दें और इस तरह उनकी कर्त्तव्य बुद्धि जग पड़े, तो यह दोनोंके लिये मंगल-जनक होगा।

"मि० जॉन ब्राइटने ठीक ही कहा था, "इंगलैण्डकी भलाई हिन्दुस्तान की भलाई ही से हो सकती है। हिन्दुस्तानके साथ हमारा जो सम्बन्ध जुड़ा हुआ है, उससे हम दोही तरहसे लाभ उठा सकते हैं। पहला उपाय तो यह है कि हिन्दुस्तानियोंको लूटें और दूसरा यह, कि हम उनके साथ व्यापार करें। हमें पिछलीही बात अधिक पसन्द है। परन्तु हम हिन्दुस्तानके साथ व्यापारकर धनवान् बनें, इसके पहले हिन्दुस्तानका धनवान् होना बहुतही जरूरी है।" अगर अंगरेज अधिकारी अपना स्वार्थही देखते रहते हैं, तो वे क्यों नहीं इसी तरह बुद्धिमान स्वार्थी बन जाते ?

साम्यवादी प्रजातन्त्र-वादियोंकी कांग्रेस।

१९०५ में जो अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी प्रजातन्त्रवादियोंकी कांग्रेस ऐमस्टर्डममें हुई थी, उसमें मि० नौरोजीने भारतके प्रतिनिधिकी हैसियतसे भाग लिया था। उसमें आपने भारतीय गवर्नमेण्टकी शासन-नीतिकी बड़ी तीव्र निन्दा की, जिसका

श्रोताओं पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। कांग्रेसके एक दर्शकने कहा था:—

"अस्सी वर्षके बूढ़े मि० नौरोजीने कांग्रेसके कामोंमें इस जोशके साथ भाग लिया, शरीर और मनकी ऐसी दृढ़ता दिखायी, कि उनसे उम्रमें ३० वर्ष छोटे लोग भी वह जोश देख दङ्ग रह जाते।...वे ऐसी ऊँची आवाज़में बोले, कि सारा हाल एक कोनेसे दूसरे कोनेतक गूंज गया। जिस समय उन्होंने शान्ति, नम्रता और तर्क-पूर्ण युक्तिके साथ भारतकी दशा लोगोंको बतलानी शुरूकी, उस समह अदिसे अन्ततक उन्होंने कहीं से भी किसी तरहकी कमज़ोरी नहीं आने दी।"

सेवाका स्वीकार।

सन् १६०१से लेकर १६०६ में जब वे कलकत्तेकी कांग्रेस के सभापति होकर विलायतसे लौटे, इस इतने समयमें उन्होंने बराबर भारतके हितके लिये जब कभी कोई मौक़ा हाथ आगया तभी उसमें भाग लिया और सदा सभाओंमें व्याख्यान देकर तथा पत्रोंमें लेख लिख-लिखकर अपनी मातृ-भूमिकी दयनीय दशा दुनियाको दिखलाते रहे। दुबारा पार्लामेण्टमें घुसनेकी चेष्टामें उन्हें सफलता नहीं हुई, इससे उन्हें निराशा तो जरूर हुई, पर उन्होंने अपनी देश-सेवाकी लगन न छोड़ी। संभव है, कि दूसरी दफे पार्लामेण्टमें पहुंचकर वे देशकी और भी अमूल्य

सेवा कर सकते; परन्तु जो कुछ उन्होंने किया है, उसीके लिये भारत उनका सदा ऋणी बना रहेगा; क्यों कि, उन्होंने इंग्लैण्ड-वालोंको भारतका ज्ञान करानेकी लगातार अथक चेष्टा की और बड़े-बड़े कट्टर वाइसरायों और भारत-सचिवोंसे भी यह बात स्वीकार करवा ही ली, कि भारतमें घोर दरिद्रता छा रही है। उनकी चेष्टाओंका फल पैदा होने लगा है और हमारा यह दृढ़ विश्वास है, कि जब भारतके भविष्यकी रचना सम्पूर्ण हो जायेगी, तब मि० नौरोजीकी सेवा बड़ी ही बहुमूल्य समझी जायेगी। वे जो कोई काम आरम्भ करते, उसमें सदा अविचलित-चित्तसे लगे रहते, स्वार्थकी छुआ-छूत न होने देते; और व्यर्थकी डींग नहीं मारते थे। उन्हें अंगरेज़ी न्यायपर बड़ा भारी भरोसा रहता था और यद्यपि लोग कभी-कभी उनकी कड़ी भाषाके लिये उनकी निन्दा करते थे, तथापि उनके किसी लेख या भाषणमें वृटिश राजसत्ताको उड़ा देनेवाली बात नहीं मिलती। मि० रानाडेका तो यहांतक कहना था, कि मि० नौरोजी सदा इस विश्वास पर काम करते थे, कि हम लोगोंको यह बात निश्चय समझ रखनी चाहिये, कि यहां पर अंगरेज़ी राज्यका रहना भारत और एसियाके लिये एक स्थिर वस्तु है।

महामति गोखलेने एक बार उन्हें संसारका सबसे बड़ा आदमी कहा था और बम्बईके एक बहुज्ञ और अनुभवी सम्पादक

के शब्दोंमें वे लाखोंमें एक थे। वे जो कभी-कभी कड़ी भाषाका प्रयोग कर बैठते थे, उसका कारण यही था, कि उस समयकी स्थिति उन्हें वैसा करनेके लिये वाध्य करती थी। सच पूछिये, तो मधुर पवित्रता, सादगी, प्रगाढ़ देशभक्ति, असीम प्रेम-वत्सलता तथा उच्च आकांक्षाओंको सफल करनेके लिये दृढ़ अध्यवसायसे भरा हुआ होनेके कारण उनका जीवन प्रत्येक भारतवासी के लिये अनुकरणीय है। अपने जीवनके ६० वर्ष उन्होंने मातृभूमिकी सेवामें आत्म-त्याग-पूर्वक लगाकर बिता दिये थे। यदि हमारे नवयुवकगण अपने जीवनमें उनके आदर्शोंका आंशिकरूपसे भी समावेश कर सकें, तो हमारी मातृभूमिका वर्त्तमान कैसाही अन्धकार-पूर्ण क्यों न दिखाई देता हो, पर भविष्यकी उज्ज्वल आशा अवश्यही दिखाई देने लग जाये।

कलकत्तेकी कांग्रेस।

लार्ड कर्ज़नकी अमलदारीके अन्तिम दिन भारतके लिये बड़े ही बुरे थे। उन दिनों हमारा राजनीतिक आकाश बड़ा ही अन्धकार-पूर्ण दिखाई देता था। नौकरशाहीकी मनमानी घरजानीसे लोग बेतरह चिढ़ उठे थे और दिन-पर-दिन यह जलन बढ़ती ही जाती थी। यद्यपि लार्ड मिन्टोने कुछ राजनीतिक

सुधार देकर नरमदलवालोंको मोह लेनेका प्रयत्न किया, तथापि दमनका दौर-दौरा ऐसा बेहिसाब बढ़ा हुआ रहा, कि लोगोंमें सन्तोषकी जड़ न जमने पायी। इसी लिये कांग्रेसके कुछ पुराने भक्तों और कार्य्यकर्ताओंका दल कांग्रेसकी "भिक्षां देहि" वाली नीतिसे कुढ़कर अंगरेज़ी शासनकी बुराइयोंका खुलमखुला विरोध करनेको मुस्तैद हो गया। इन लोगोंने गवर्मेन्टकी सदिच्छामें सन्देह करते हुए, पुरानी नीतिको छोड़कर कांग्रेसको नये ढर्रे पर चलाना चाहा। इसका परिणाम यह हुआ, कि कांग्रेसके कैम्पमें दो दल हो गये और नौकरशाहीकी प्रत्येक कुविचार-पूर्ण काररवाई इस नये दलको पुष्ट करती चली गयी। बेचारे नरमदलवाले न इधरके रहे और न उधरके। इस लिये वे अपने रूठे हुए साथियोंको मनानेका प्रयत्न करने लगे; पर सफलताकी कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती थी। ऐसे समयमें कौन इस विकट स्थितको सम्हाले, कौन नौकरशाही पर बेतरह बिगड़े हुए नेताओंको एक मत करे यही चिन्ता सबको चंचल करने लगी। इसी लिये लोगोंमें कांग्रेसके भविष्यके सम्बन्धमें निराशा फैलाने लगी। गरमदलवाले चाहते थे, कि लोकमान्य तिलक या लाला लाजपतराय कांग्रेसके सभापति हों और नरम दलवालोंकी इच्छा थी, कि कोई नरम नेता ही कांग्रेसकी गद्दीपर बैठे। इसी दलादलीको देख, लोगोंने मि० दादाभाई नौरोजीको

सभापति चुनलिया, क्योंकि इनपर दोनों दलवालोंकी समान भक्ति थी। तदनुसार १९०६ ई० के दिसम्बर महीनेमें होनेवाली कलकत्ता कांग्रेसके आपही अध्यक्ष हुए। आपके सिवा और किसी नेताको तीन-तीनवार कांग्रेसका सभापति होनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। आपके इस चुनावके सम्बन्धमें इण्डियन रिव्यूने अपने जनवरी १९०७वाले अङ्कमें लिखा था,—

"इस साल कांग्रेसमें दलबन्दी हो जानेसे यह भय होने लगा था, कि कहीं यह संस्था टूट न जाये; पर दादाभाई नौरोजीके सभापति चुन लिये जानेसे यह आशङ्का दूरहो गयी। सारी दलबन्दी मिट गयी और लोगोंने एकमत होकर बड़ी सफलताके साथ यह अधिवेशन सम्पूर्ण किया। आपकी युक्तिपूर्ण बातोंने सबके दिलोंसे भेद-भाव दूर कर दिये। जिस कठिन कर्त्तव्यका पालन करने के लिये वे बुलाये गये थे, उसे उन्होंने सोलह आने सफलताके साथ सम्पन्न कर दिखाया।"

जैसे उनके सभी भाषणोंमें युक्ति और तर्क भरा रहता था, वैसेही उनके अध्यक्षतावाले भाषणमें भी मधुर युक्तियाँ और अनूठी तर्कणाएं भरी हुई थीं। जिस बुद्धिमानीके साथ उन्होंने दलबन्दियोंको मिटाया, उसे देखकर बार-बार उनकी प्रशंसा करनी पड़ती है। उनकी वह परिपक्व अवस्था और पचासों वर्षकी निस्स्वार्थ देश-सेवा :काम कर गयी और लोग भेदकी

दीवार तोड़कर नवीन आशाके आलोकमें चले आये। उन्होंने देशमें रहकर जो कुछ देखा-सुना था और विदेशमें जाकर जो कुछ अनुभव प्राप्त किया था, उसके बलपर आपने भारतवर्षके लिये स्वराज्यकी मांग बड़े जोरोंके साथ की। उसी दिनसे भारतीय राष्ट्र इस मन्त्रको जप रहा है और अब तो लोकमान्य तिलकका यह प्रिय वाक्य एक-एक भारतीयका ध्येय हो रहाहै, "कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।" आजतक इतनी स्पष्टताके साथ किसी नेताने भारतको उसका लक्ष्य या ध्येय नहीं सुनाया था। मि० नौरोजीने अपने भाषणमें यह बात भली भाँति प्रकट कर दिखायी, कि सम्प्रति वृटिश-साम्राज्यमें हमारा कौनसा स्थान है और किस लिये हमारा यह न्याय अधिकार है, कि हम वृटिश-सम्राज्यमें समानधिकार-प्राप्त उपनिवेशोंकी स्थिति प्राप्त कर लें। उन्हें लार्ड मार्ली और उनके साथियोंके उदार-भावपर बड़ा विश्वास था और उन्हें आशा थी, कि वे लोग भारतीय प्रश्नोंको हल कर सकेंगे। अपनी उस स्मरणीय वक्तृताके अन्तमें उन्होंने कहा था--

"मैं नही जानता, कि जीवनके जो थोड़े दिन बाकी हैं, उनमें मुझे कौनसा सुख-सौभाग्य देखना नसीब होगा अथवा कबतक मैं जीवित रहूंगा इसका भी कोई ठीक-ठिकाना नहीं है। इसीलिये मैं अपने देश और देशवासियोंके लिये प्रेम

और भक्तिका एक सन्देसा छोड़ जाना चाहता हूं और वह यही है, कि आप लोग एकमत होकर अध्यवसायके साथ स्वराज्य प्राप्तिके लिये उद्योग करें, जिसमें भारतकी जो जनता प्रतिवर्ष प्लेग, अकाल और दरिद्रताकी मारसे मरती चली जाती है और लाखों मनुष्योंको भरपेट भोजन मिलना भी मुशकिल हो रहा है यह दुर्दशा मिट जाये। हमारी कामना है, कि भारत स्वराज्य प्राप्त कर, एक बार फिर, संसारकी बड़ी और सभ्य जातियोंमें गिने जानेका गौरवमय आसन प्राप्त करे।"

उनकी इस कामनाके अनुसार देशने अबतक कितना कार्य किया है, यह बात वर्त्तमान इतिहाससे स्पष्टही विदित हो जाती है। कौन कह सकता है, कि भारतकी वर्त्तमान बढ़ी हुई आकांक्षाओंका बीज मि० दादाभाईके सन्देसेमें नहीं छिपा हुआ था?

वर्ष-गांठ के सन्देसे।

अपने जीवनके अन्तिम बारह वर्ष उन्होंने एक प्रकारसे एकान्तवासमें ही बिताये थे; किन्तु वे कभी अपने देशको न भूल सके। वे बुढ़ापेके कारण देशके कार्योंमें जवानीके दिनोंकी तरह उत्साहके साथ भलेही भाग न लेते थे; पर अपने देशके नेताओंको वृद्धपितामहकी तरह महत्त्वपूर्ण विषयों पर बहुमूल्य परामर्श

दिया करते थे। इसी लिये समय-समयपर लोग इस वृद्ध-तीर्थमें आकर उचित उपदेश ले जाया करते थे। अपने हृदयकी सरलता और शुद्धताके कारण वे अपने देश-वासियोंको सदा मिल-जुलकर काम करनेका उपदेश दिया करते थे। हर साल कांग्रेसमें उनका सन्देसा पढ़ा जाता था और यह उसके अधिवेशनोंकी एक खास बात समझी जाती थी। इधर कांग्रेस भी हर साल उनकी सेवाओंको स्वीकार करते हुए उनके दीर्घजीवनकीकामनाके साथ-साथ उन्हें बधाई दिया करती थी।

परन्तु सबसे बड़ी विशेषता उस समय दिखलाई देती थी, जब ४ थी सितम्बरको उनके पास वर्ष-गाँठ की बधाइयां वृटिश साम्राज्यके हर भागसे पहुंचा करती थीं। इनके उत्तरमें मि० दादाभाई धन्यवादके साथ-साथ अपना सन्देसा देश-वासियोंके नाम भेजा करते थे; जिसमें साल भरकी प्रधान प्रधान घटनाओंका इशारा करते हुए वे देशकी अधिकाधिक सेवा करनेके लिये अपने स्वदेशीय भाइयोंको उत्तेजित किया करते थे।

लार्ड मार्लेके सुधारोंपर आपने सन्तोष प्रकट किया था और आशा की थी कि इसी तरह हमलोग धीरे धीरे स्वराज्य पा लेंगे। १९११ में जब सम्राट और सम्राज्ञीने दिल्लीमें आकर सिंहासनारोहण किया, तब भी आपने ब्रिटिश-राज्यके प्रति अपनी गहरी आशा तथा विश्वास प्रकट किया था।

और भक्तिका एक सन्देसा छोड़ जाना चाहता हू और वह यही है, कि आप लोग एकमत होकर अध्यवसायके साथ स्वराज्य प्राप्तिके लिये उद्योग करें, जिसमें भारतकी जो जनता प्रतिवर्ष प्लेग, अकाल और दरिद्रताकी मारसे मरती चली जाती है और लाखों मनुष्योंको भरपेट भोजन मिलना भी मुशकिल हो रहा है यह दुर्दशा मिट जाये। हमारी कामना है, कि भारत स्वराज्य प्राप्त कर, एक बार फिर, संसारकी बड़ी और सभ्य जातियोंमें गिने जानेका गौरवमय आसन प्राप्त करे।"

उनकी इस कामनाके अनुसार देशने अबतक कितना कार्य किया है, यह बात वर्त्तमान इतिहाससे स्पष्टही विदित हो जाती है। कौन कह सकता है, कि भारतकी वर्त्तमान बढ़ी हुई आकांक्षाओंका बीज मि० दादाभाईकेसन्देसेमें नहीं छिपा हुआ था?

वर्ष-गांठ के सन्देसे।

अपने जीवनके अन्तिम बारह वर्ष उन्होंने एक प्रकारसे एकान्तवासमें ही विताये थे; किन्तु वे कभी अपने देशको न भूल सके। वे बुढ़ापेके कारण देशके कार्यों में जवानीके दिनोंकी तरह उत्साहके साथ भलेही भाग न लेते थे; पर अपने देशके नेताओंको वृद्धपितामहकी तरह महत्त्वपूर्ण विषयों पर बहुमूल्य परामर्श

दिया करते थे। इसी लिये समय-समयपर लोग इस वृद्ध-तीर्थमें आकर उचित उपदेश ले जाया करते थे। अपने हृदयकी सरलता और शुद्धताके कारण वे अपने देश-वासियोंको सदा मिल-जुलकर काम करनेका उपदेश दिया करते थे। हर साल कांग्रेसमें उनका सन्देसा पढ़ा जाता था और यह उसके अधिवेशनोंकी एक खास बात समझी जाती थी। इधर कांग्रेस भी हर साल उनकी सेवाओंको स्वीकार करते हुए उनके दीर्घजीवनकीकामनाके साथ-साथ उन्हें बधाई दिया करती थी।

परन्तु सबसे बड़ी विशेषता उस समय दिखलाई देती थी, जब ४ थी सितम्बरको उनके पास वर्ष-गाँठ की बधाइयां बृटिश साम्राज्यके हर भागसे पहुंचा करती थीं। इनके उत्तरमें मि० दादाभाई धन्यवादके साथ-साथ अपना सन्देसा देश-वासियोंके नाम भेजा करते थे; जिसमें साल भरकी प्रधान प्रधान घटनाओंका इशारा करते हुए वे देशकी अधिकाधिक सेवा करनेके लिये अपने स्वदेशीय भाइयोंको उत्तेजित किया करते थे।

लार्ड मार्लेके सुधारोंपर आपने सन्तोष प्रकट किया था और आशा की थी कि इसी तरह हमलोग धीरे धीरे स्वराज्य पा लेंगे। १९११ में जब सम्राट और सम्राज्ञीने दिल्लीमें आकर सिंहासनारोहण किया, तब भी आपने ब्रिटिश-राज्यके प्रति अपनी गहरी आशा तथा विश्वास प्रकट किया था।

इसके बादवाले सालके सन्देसेमें आपने लार्ड हार्डिङ्गके ऊपर बम फेंके जानेपर दुःख प्रकट करते हुए, पबलिक-सर्विस कमिशनकी नियुक्ति तथा सर रासविहारी घोष और श्रीतारक नाथ पालितके कलकत्ता विश्वविद्यालयके लिये प्रचुर धन-दानपर सन्तोष प्रकट किया था। साथही आपने सर्वेण्ट्स-आफ-इण्डिया-सोसाइटी की बहुमूल्य सेवाओंकी भी अच्छी प्रशंसा की थी। अन्तमें आपने दक्षिण-आफ्रिकाके प्रसङ्गपर भी नीचे लिखे विचार प्रकट किये थे।

"फिर भी उपनिवेशोंमें—खासकर दक्षिण अफ्रिकामें—भारतीयोंकी ऐसी दुर्दशा होने लगी है, कि हमलोग दुःखी हुए बिना नहीं रह सकते। उन बेचारोंने बहुत दिनोंसे सबके साथ इतने कष्ट उठाये हैं, कि स्वयं साम्राज्य-सरकारको उनकी सुध लेना चाहिये। हालमें दक्षिण-अफ्रिकामें जो नया क़ानून ज़ारी किया गया है, उसके बारेमें इम्पीरियल गवर्नमेण्ट एकदम चुप्पी साधे रह गयी—यह बात देखकर हमलोगोंको बड़ा ही दुःख होरहा है। तोभी मुझे आशा है, कि उनलोगोंके साथ न्याय किया जायेगा और उनका मामला यों ही बट्टे-खाते न डाल दिया जायेगा।"

युद्ध और मि० नौरोजीका सन्देसा ।

अगस्त १६१४ में जब युरोपमें युद्ध आरम्भ हुआ, तब मि० नौरोजीने बूढ़े नेताकी हैसियतसे एक पत्र यहां की जनता के नाम लिखा, जिसमें आपने लिखा था,—"हमलोग इस अँगरेज़ी साम्राज्यकी प्रजा हैं, अतएव हमलोगोंको उसकी इस विपत्तिमें तन-मन-धनसे सहायता करनीही उचित है। मैं जीवन भर अँगरेज़ी राज्यकी बुराइयां ही दिखलाता रहा हूँ और समय-समयपर बहुतही कड़ी बातें कह डाली हैं, अतएव इस समय मैं जो कुछ कहूँगा, वह एक कोरे खुशामदी की बात न होगी। अँगरेज़ोंने संसारकी वृद्धिमें बहुत कुछ भाग लिया है और दुनियांको बहुत लाभभी पहुंचाया है। इसलिये अँगरेज़ जिस न्याय, धर्म्म, सम्मान, मनुष्यता और बड़प्पनके लिये लड़ रहे हैं, उसमें हमें इनकी मदद करनी चाहिये।"

इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि मि० नौरोजी जो समय-समयपर अँगरेज़ी सलतनतकी बुराई किया करते थे, वह सच्चे दिलसे, सच्ची बातें ही कहते थे। यदि उनके मनमें द्वेष होता, तो इस युद्धके अवसरपर इस प्रकार, उसी वृटिश-साम्राज्यकी सहायता करनेके लिये अपने सब देश-वासियोंसे कभी न कहते, जिसकी बुराइयोंका कच्चा चिट्ठा बतानेमेंही

उनके तमाम बाल पके थे। वास्तवमें जिसे मनुष्य बहुत मानता या चाहता है, उसीकी बुराइयोंकी तीव्र आलोचना करता है ; क्योंकि वह अपने प्यारकी चीज़में बुराईका धब्बा लगा हुआ नहीं देखना चाहता ; लेकिन मनुष्यके मनकी यह सबसे बड़ी कमज़ोरी है, कि वह अपनी सच्ची बुराई बतलाने-वालोंको भी अपना परम वैरी समझने लगता है और अपनी बुराईकी ओर स्वार्थकी प्रेरणासे या अहङ्कारकी उत्तेजनासे ध्यान देना नहीं चाहता।

प्रायः सबको मालूम है, कि लोकमान्य तिलकने भी इस युद्धके अवसरपर इसी उदारतासे काम लिया था और जिस ब्रिटिश-साम्राज्यके हठी नौकरशाहोंने उन्हें जीवनभर कष्टही पहुंचाया था, उसकी सहायताको वे तन-मन-धनसे तैयार हो गये थे और तमाम देशको भी तैयार होनेकी सलाह दी थी। लेकिन नौकरशाहोंकी निगाह उनकी ओरसे तबतक न बदली, जबतक वे चिरनिद्रामें शयनकर इहलोकसे प्रस्थान न कर गये!

९१वीं वर्षगांठ।

मि० नौरोजीकी ९१ वीं वर्ष-गाँठ सारे हिन्दुस्तानमें बड़ी धूमधामसे मनायी गयी। असंख्य तार और पत्र ४थी सितम्बर १९१५ को दादाभाई के घर पहुंचे, जिनमें एक हिन्दुस्तान-

के जनप्रिय वायसराय लार्ड हार्डिञ्जकी ओरसे भी था। उन्होंने अपने तारमें लिखा था,—

"आपकी ६१ वीं वर्षगांठ पर मैं हृदयसे आपको बधाई देता और आपका मङ्गल चाहता हूँ। मैं आशा करता हूँ, कि परमात्मा अभी और कुछ दिन आपको इस संसारमें रखेगा, जिसमें आपके बहुमूल्य जीवनके आदर्शों से और लोग भी लाभ उठाते रहें।"

इसके जवाबमें मि० नौरोजीने लिखा,—

"श्रीमानने मेरी ६१ वीं वर्षगांठके अवसरपर जो बधाई और हार्दिक शुभ-कामना भेजी है, उससे मैं बड़ा ही मुग्ध हुआ हूँ और इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। मैं आशा करता हूं, कि इस समय संसारमें जो भयङ्कर युद्ध जारी है, वह शीघ्रही समाप्त होगा और उसका परिणाम अत्यन्त शुभ होगा। मुझे इस बातका पूर्ण विश्वास है, कि भारत सदा अपने सम्राट्के प्रति राजभक्ति और प्रीति बनाये रहेगा, जिसके बदलेमें उसके साथ न्याय किया जायेगा और वह भी शीघ्रही साम्राज्यके अन्य भागोंकी भांति स्वतन्त्र नागरिकोंका अधिकारभोग करने लगेगा।"

बम्बईके गवर्नर साहबने भी इसी तरहका एक तार उन्हें बधाई देते हुए भेजा था। इस प्रकार अनगिनत पत्रों और

तारोंका उत्तर अलग-अलग देनेमें असमर्थ होकर आपने समाचर पत्रोंमें इस आशयकी एक चिट्ठी छपवायी :—

"मेरी ६१वीं वर्षगांठपर मेरे पास इतने बधाईके पत्र और तार पहुंचे, मेरे मित्रों और प्रशंसकोंने भिन्न-भिन्न स्थानोंसे इतनी शुभकामनाएँ लिख भेजी हैं, कि उन सबलोगोंको धन्यवाद देना मैं बहुतही ज़रूरी समझता हूँ। साथही मैं उन संस्थाओंका भी कृतज्ञ हूं, जिन्होंने इस अवसर पर बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और अन्याय स्थानोंमें बड़ी बड़ी सभाएँ तक कर डाली हैं। इन सब बातोंसे मैं अत्यन्त मुग्ध हो गया हूँ।

"यह समय बड़ाही नाज़ुक है और ब्रिटिश-साम्राज्यमें रहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका इस समय यही कर्त्तव्य है, कि वह मित्रशक्तियोंको, जो मानवीय स्वतन्त्रता और मनुष्यत्वके लिये युद्ध कर रही हैं, सहायता दें।

"इग्लेंएडने अपने अप्रतिहत साहस और एकाग्रताके कारण संसारकी जातियोंमें एक अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया है और दुनियांको एक नमूना बनकर दिखला दिया है। मेरा विश्वास है, कि प्रत्येक भारतवासी उसके शीघ्र विजयी होकर युद्धसे निकलनेपर सन्तुष्ट होगा।"

इसके सिवा बम्बई-निवासिनी स्त्रियोंका एक डेपुटेशन भी उनके घरपर उसी दिन जाकर मिला। डेपुटेशनमें हिन्दू,

मुसलमान और पारसी आदि सभी जातियोंकी स्त्रियाँ थीं। प्रसिद्ध कविता-कानन-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडूने डेपुटेशनकी ओरसे भारतके इन वृद्ध-वसिष्ठका बड़ेही सुललित शब्दोंमें अभिनन्दन किया। गुजराती-स्त्री-मण्डलकी श्रीमती जमनाबाई साखाई ने भी एक स्वरचित अभिनन्दन पत्र पढ़ा। इसका उत्तर देते हुए आपने कहा था,—"मुझे आपलोगोंको यह सम्वाद सुनाते हुए बड़ा हर्ष हो रहा है, कि मेरे परम मित्र सर विलियम वेडरबर्न और कुछ अन्य सज्जन भारत सचिव मिष्टर चेम्बरलेनको एक स्मरण पत्रक देने जा रहे हैं, जिसका प्रार्थित विषय :भारतीय कन्याओं और महिलाओंमें शिक्षा-प्रचार की व्यवस्था है। भारतको इस आन्दोलनमें दिलोजानसे शामिल होन चाहिये। मुझे आशा है, कि इस बार स्त्रियोंकी विशेष शिक्षाका कुछ स्थायी प्रबन्ध अवश्य हो जायेगा, चाहे इसका परिणाम जो कुछ हो ; पर यह हम हिन्दुस्तानियोंका ही प्रधान कर्त्तव्य है, कि अपनी बहू-बेटियोंको लिखा-पढ़ाकर बुद्धिमती बनानेका उपाय करें।"

सच पूछिये, तो मि० नौरोजीके जीवनके प्रधान व्रतोंमें 'स्त्री-शिक्षाका प्रचार' भी अन्यतम था। अतएव वे यदि ऐसा न कहते, तो और कौन कहता ?

मि० नौरोजीका पुस्तकालय ।

इसके बादही मि० नौरोजीने अपना अमूल्य पुस्तकालय बम्बई-प्रेसीडेंसी-एसोसियेशनको दानकर दिया, जिसमें सैकड़ों वर्षकी पुरानी और अमूल्य पुस्तकें भरी हुई थीं । यह पुस्तकालय ज्ञान-राज्यका अनुशीलन करनेवाले होनहार विद्वानों और देशकी सेवा करनेवाले राजनीतिक पुरुषोंके अध्ययनकी एक अच्छी चीज, है ।

बम्बई-विश्वविद्यालय ।

हम लोग आरम्भमें ही लिख चुके हैं, कि मि० नौरोजी शिक्षा-प्रचारके लिये सदैव उद्योग करते रहते थे। फ़रवरी १९१६ में उनके इसी शिक्षा-प्रेमके उपलक्ष्यमें बम्बई-विश्वविद्यालयने उन्हें डाक्टर-आफ-लाजकी सम्माननीय उपाधि दी। इस उपाधि वितरणके लिये खास तौरसे सभाकी गयी थी, जिसके सभापति बम्बईके गवर्नर लार्ड विलिङ्गडन बनाये गये थे, क्योंकि वे इस विश्वविद्यालयके उस समय चैन्सेलर थे। वाइस-चैन्सेलर रेवरेंड डाक्टर मैकिचनने मि० दादाभाईका चैन्सलरको परिचय देते हुए उनके खूब गुण गाये और उनकी योग्यताका जी भरकर बखान किया। सच पूछिये, तो यह

उपाधि देकर बम्बई विश्वविद्यालयने दादाभाईका नहीं, बल्कि अपना मान बढ़ाया था।

जीवन सन्ध्या।

बुढ़ापा पूरी तरह आ चुका था। उमर नब्बे पार कर गयी थी, अतएव कहें तो कह सकते हैं कि यह काल उनके जीवनकी सन्ध्याका था। इस बुढ़ापेमें उन्हें यह देख-देखकर बड़ा सन्तोष होता था, कि जिन सुधारोंके लिये वे सदा चेष्टा किया करते थे, वे धीरे-धीरे होते जाते हैं और इसीसे वे स्वातंत्र्य-प्रेमी अंगरेज़ जातिपर विश्वास और उनकी न्यायानुशीलता पर भक्ति रखनेकी सदा अपने देश-भाइयोंको सलाह दिया करते थे। वरसोवामें अपने एकान्त गृहमें बैठे हुए भी वे भारतकी राजनीतिक तथा समाजिक प्रगतिकी ओर सदैव दृष्टि रखते थे और जब कभी देशके गिने-चुने नामी नेतागण उनके पास पहुँच जाते, तब उनसे घंटों इन विषयोंके सम्बन्धमें युक्ति, तर्क तथा बुद्धिमत्तासे भरी हुई बातें किया करते थे।

अपने जीवनके अन्तिम बारह वर्ष उन्होंने वरसोवामें एकान्त-जीवन व्यतीत करते हुए बिताये—केवल एक बार बम्बई-विश्वविद्यालयकी वह उपाधि लेनेके लिये बम्बई आये

थे। परन्तु इस एकान्तमें भी वे देश-हितकी चिन्तासे कभी विरत न होसके।

मनुष्यको अपना जीवन जहांतक कार्यक्षम, पवित्र और आदर्श स्वरूप बनाना चाहिये, वहांतक उन्होंने अपने जीवनको सर्वसाधारणके उदाहरण योग्य बनाया था। साथही भगवान ने उन्हें लम्बी आयु भी भोगनेको दी। यह बात प्रायः ऐसे क्षणजन्मा पुरुषोंमें किसी किसीके ही भाग्यमें घटती है। इसी लिये इस वृद्ध राजनीतिक ऋषिके दर्शन कर भारत-निवासियोंके आनन्दकी सीमा नहीं रहती थी। उनके वे सब साथी-संगी जो जीवनभर उनके सभी कामों में हाथ बटाया करते थे, एक एक करके सूखे पत्ते की तरह झड़ते चले जाते थे, जिससे उनको जीवनसे बड़ी विरक्ति पैदा होती जाती थी। उनके पुराने मित्र सर विलियम वेडरबर्न बराबर इंग्लैण्डसे उनके पास पत्र लिखा करते थे। परन्तु वृटिश-कांग्रेस कमिटीके प्रधान कार्य-कर्ता ऐलन-अक्टेवियन ह्यूम (A. O. Hume) की मृत्यु हो जानेसे उन्हें बड़ा शोक हुआ। इधर हिन्दुस्तानमें भी महामति गोपालकृष्ण गोखले और सर फिरोजशाह मेहताकी असामयिक मृत्युने भी उन्हें दुःख पहुंचाया। इसी तरह उनके बादके कितनेही कमऊम्र कांग्रेस-भक्त और देश-सेवक दुनियांसे कूचकर गये। यही देख-देखकर वे सोचा करते थे, कि मुझे

गीतने क्यों भुला रखा है ? पर मौत किसीको नहीं भूलती । यह ठीक समय पर सबके पास आती है। उसको उस समय इस बातका ध्यान नहीं रहता कि कौन बूढ़ा है, और कौन जवान ।

सूर्य्यास्त ।

सन् १६१७की १ली जूनको हिन्दुस्तान भरमें यह समाचार फैल गया, कि मि० नौरोजीको बड़ी भयङ्कर पीड़ा हुई हैं। पर उसी दिन तीसरे पहरको यह खबर पाकर कि अब वे खतरेसे बाहर हैं, लोगोंको बड़ा सन्तोष हुआ। किन्तु तो भी ६३ वर्षकी पकी आयु लोगोंको शङ्कामें डालेही रही। २री जूनको वे अच्छी चिकित्साके लिये बम्बई लाये गये, पर कोई फल न निकला। वे कभी तो अच्छे हो जाते, कभी फिर बुरी तरह बीमार पड़ जाते। इसी तरह हफ्तों वे जीवन मरणके झगड़ेमें पड़े रहे। अन्तमें ३० वीं जूनको सन्ध्याके समय वे बड़ी शान्तिके साथ परम-धामको चले गये। मरनेके समय उनकी कन्याएँ और उनकी सन्तानें उनकी शय्याको सदा सब समय घेरे रहती थीं। अन्तमें सिर्फ आधे घंटेके लिये उनकी चेतना लुप्त हुई थी, नहीं तो उनका ज्ञान बराबरही बना रहा। कहते हैं, कि वे बड़ीही शान्तिके साथ मृत्युको

गोदमें सो गये। मरते समय उन्हें किसी प्रकारकी वेदना नहीं हुई। मृत्यु हो जानेपर भी उनके मुखड़ेपर बड़ी शान्ति और ऋषियोंका सा तेज विराजमान था।

अगले दिन उनकी मृतक-क्रिया की गयी, जिसमें पन्द्रह हजार मनुष्योंने भाग लिया था। उस समय कुछ प्रसिद्ध पुरुष भी उनकी शवयात्राके साथ थे, जिनमें उल्लेखयोग्य व्यक्तियोंके नाम हैं :—सर जमसेठजी जीजी भाई, सर दिनशा इदुल जी वाचा, सर शापुरजी भरूचा, सर चिम्मनलाल शीतलवाड़, सर नारायण गणेश चन्द्रवर्कर, आनरेबल मि० श्रीनिवास शास्त्री, मि० के० नटराजन, लोकमान्य तिलक और मि० जिन्ना आदि।

शव-संस्कारके पश्चात् सर नारायण चन्द्रवर्करने उनके जीवन पर एक दृष्टि डालते हुए बड़ाही मार्मिक व्याख्यान दिया था। उसमें आपने कहा था,—

"हम यह कहें कि वे हिन्दुस्तानमें दूसरे ज़रस्त होकर आये थे, तो न तो अत्युक्ति होगी और न धर्मपर कोई आघात ही पहुंचेगा। उन्होंने अपने पवित्र विचारों, पवित्र भाषणों और पवित्र कार्यों द्वारा धर्मके प्रकाश को और भी उज्ज्वलकर दिखाया था, इसमें सन्देह नहीं। इस देशके केवल पारसीही नहीं, वरन् सभी लोग उन्हें अपना समझते थे। सबके दिलों-

पर उनकी हुकूमत थी। वर्तमान समयमें उनका बिछुड़ना, देशके लिये बड़ीही हानिकर बात हुई है। तो भी वे मरे नहीं हैं। आजसे ९३ वर्ष पूर्व जो सूर्य भारतमें उदय हुआ था, वह आज डूबा है सही, पर उन्नत भारतके आकाशमें फिर उदय होनेके लिये ही डूबा है। वे शरीरसे भलेही हमारे साथ न रहें; पर उनकी वह आदर्श देश-सेवा तो हमें सदाही उनके पास रखेगी। उनके वे निस्स्वार्थ कार्य कभी मरनेवाले थोड़े हैं ?

अतएव भाईयों ! आओ, हम सब आज इस बातकी प्रतिज्ञा कर लें, कि हम उनके जीवनके आदर्शसे शिक्षा ग्रहण कर, भारतके हितके लिये अपना सारा स्वार्थ विसर्जन करनेके लिये प्रस्तुत हो जायंगे। साथही हमें उन्हींकी तरह पूर्ण देशभक्ति और अपूर्व धैर्यका अवलम्बन करनेकी भी प्रतिज्ञा कर नी होगी, क्योंकि इन्हीं गुणोंने दादाभाईके जीवनको ऐसा पवित्र और पूजनीय बनाया था।"

सहानुभूति।

देशभरसे उनके परिवारवालोंके पास सहानुभूतिके तार पहुंचे। जगह-जगह शोक-सभाएं हुईं और उनकी ७० वर्षकी देश-सेवाकी प्रशंसाकी गयी। बम्बई-प्रेसिडेन्सी-ऐसोसियेशनकी

तरफसे जो शोक सभा हुई, उसमें सर दिनसा वाचाने उनके जीवनके सम्बन्धमें एक बड़ा ही मार्मिक व्याख्यान दिया। जगह जगह उनके नामपर लाइब्रेरी आदि सार्वजनिक संस्थाएं खोली गयीं और बम्बईके युनिवरसिटी-हालमें उनका एक बड़ासा चित्र लटकाया गया। इस चित्रका उद्घाटनोत्सव बाबू (अब सर) सुरेंद्रनाथ बनर्जीके कर-कमलों द्वारा सम्पन्न कराया गया था। उस समय भी लोगोंने आपके खूब गुण गाये थे। पारसियोंने तो उनके नामको अमर करनेके लिए उसे अपने पञ्चाङ्गमें ही सम्मिलित कर लिया। सच पूछिये, तो दादाभाई इतने बड़े आदमी थे, कि उनका जितना भी आदर किया जाता, कम था।

पटाक्षेप।

पाठक! यही तो वह विशाल-हृदय, उन्नत-मना और पवित्र बुद्धि दादाभाईका जीवन-चरित है, जिससे हम चाहें तो न जाने कितनी बहुमूल्य शिक्षाएं प्राप्त कर सकते हैं। वह वह महान् आत्मा थी, जिसने कभी अपनी आत्माको स्वार्थकी वेदीपर न्यौछावर न किया, जो कभी ईश्वरके सिवा और किसी शक्तिके सामने न झुकी, जिसने कभी दुनियाकी, धकझककी परवा न की और आप कर्त्तव्यके पथपर वीरकी तरह

डटा रहा। उसका सारा जीवन एक विशाल कर्मक्षेत्र था और वह जो कुछ कहता था, वह संसारकी भलाई करनेवाला अमूल्य उपदेश था। उसने कभी किसी शत्रुका भी दिल न दुखाया और अपने ६० वर्षसे अधिकके दीर्घ जीवनमें उसने धर्मको छोड़कर अधर्मका कभी पल्ला न पकड़ा।

आईये, पाठकों! हम भी उस महान् आत्माके नामपर हृदयसे श्रद्धाकी पुष्पाञ्जलि भेंट करें और ईश्वरसे प्रार्थना करें, कि वह हमारी आत्मामें वह बल दे, जिससे हमभी अपने जीवनमें दादाभाईके आदर्शोंको कुछ-कुछ ला सकें। दुनियाँका कुछभी भला न कर, कोई सौ वर्ष जिया भी तो क्या हुआ? जीना तो उसीका सार्थक है, जो देशकी सेवा करते-करते जवानीमें ही मौतकी गोदमें जा रहे! फिर यदि दादाभाईकी तरह निरंतर परोपकार, देश-सेवा और धर्मानुशीलनमें लगे हुए दीर्घ-जीवन भी प्राप्त हो जाये, तो इस दुहरे आनन्दका क्या पूछना है? ईश! आशीर्वाद करो तुम्हारे इस प्यारे भारत देशमें हर जगह दादाभाईकेसे पुरुष-पुंगवोंकी भरमार हो।

"भारतके भाग्य-विधाता" सिरीज

के

दो अमूल्य रत्न ।

लाला लाजपतराय

पञ्जाब-केशरी स्वनामधन्य लाला लाजपतरायका सचित्र जीवनचरित्र। लालाजीके जन्मसे लेकर आजतकको सभी घटनाओंका समावेश है। इतनी सामयिक जीवनी दूसरी नहीं है। मूल्य ॥) मात्र।

तपोनिष्ठ महात्मा अरविन्द घोष।

महाप्राण अरविन्द घोषका सचित्र जीवनचरित्र और उनके लेख तथा व्याख्यानों और अपनी स्त्रीको लिखे पत्रोंका अपूर्व संग्रह। किस प्रकार अरविन्दने विलायतमें रहकर विद्याध्ययन किया, किस प्रकार बड़ौदा-नरेश उनके पाण्डित्यपर मुग्ध हुए, किस प्रकार उन्होंने बड़ौदा राज्यके एक उच्चपदको त्यागकर देशसेवाका व्रत ग्रहण किया—यह सब इसमें आ गया है। हरेक स्वदेशानुरागी को यह पुण्य चरित पढ़ना चाहिये। मूल्य ॥) आना।

पता—हिन्दी-साहित्य-प्रचार-कार्यालय
१६२-१६४, हरिसन रोड, कलकत्ता।

मि० नौरोजीके

कुछ चुने हुए लेखों और भापणोंका संग्रह ।

भाषण।
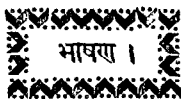
१—कलकत्तेकी दूसरी कांग्रेसका भाषण।

(१८८६ ई०)

आप लोगोंने आज मुझे जो सम्माननीय आसन प्रदान किया है, उसके लिये मैं आपलोगोंका कितना कृतज्ञ हूं, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। मैंने पहले तो सोचा, कि शायद यह बंगालने बम्बईको गये सालका बदला दिया है; क्योंकि हम लोगोंने पार साल एक बंगालीको—मिस्टर बनर्जीको—अपने यहांसभापतिका आसन प्रदान किया था। पर सच पूछिये, तो हम लोगोंने मि० बनर्जीको बंगालका आदर करनेके विचारसे सभापति नहीं चुना था, बल्कि हम उन्हें इस आसनके लिये सबसे अधिक योग्य और उपयुक्त समझते थे, इसीसे हमने उन्हींको अपनी कांग्रेसका अध्यक्ष बनाया। अब मैं देखता हूं, कि मेरा यह चुनाव कुछ बंगालकी ओरसे बम्बईको बदला दिये जानेके ख़यालसे नहीं किया गया है, वरन् जैसाकि प्रस्तावक और अनुमोदक महोदयोंने कहा है, आप लोगोंने मुझे इस आसनके योग्य समझकर ही यहां ला बिठाया है। ईश्वर करे, आपलोगों

की यह आशा पूरी हो और आपलोगों'ने जो कृपाकर मेरे प्रति इतनी दया दिखायी और मेरी इतनी बड़ाई कर डाली है, उसका मैं यथार्थ पात्र प्रमाणित होऊं; परन्तु ऐसा हो चाहे नहीं हो; किन्तु जब देशके इतने बड़े-बड़े आदमियों'ने मेरे प्रति इतने दया-भरे शब्द कहे हैं तब मैं कैसे कहूं, कि मेरे मनमें गर्वका उदय नहीं हुआ है ! इसके लिये मैं आप लोगों'के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। (करतल-ध्वनि)

आपके भूतपूर्व चेयरमैनने भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके प्रतिनिधियों-का हृदयसे जो स्वागत किया है, उसके बदलेमें मैं उनको और उनके साथ-साथ अपने समस्त बंगाली बन्धुओंको अपनी और भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे आये हुए प्रतिनिधियोंकी ओरसे इस प्रकारके उत्तम स्वागतके लिये हार्दिक धन्यवाद देता हूं। अभी तक जैसा कुछ स्वागत हुआ है और अगले कई दिनोंमें जैसा कुछ होनेकी आशा दिखाई देरही है, उससे मेरे मनमें यह बात निस्सन्देह बैठ गयी है, कि हम लोग अपनी इस कलकत्ता-यात्रा-की बहुतसी बातें बहुत दिनोंतक भूल न सकेंगे। (तालियां)

केवल दोही दिन पहले मुझे कांग्रेसका अध्यक्ष बनने और भाषण देनेके लिये कहा गया था, अतएव मैंने बहुत डरते-डरते आपलोगोंकी यह आज्ञा शिरोधार्य की थी। इसी लिये यदि

मुझसे कुछ त्रुटियाँ हों, तो उनके लिये मैं आपलोगोंसे पेशगी ही क्षमा माँगे लेता हूं। (घोर करतल ध्वनि)

कांग्रेसका महत्त्व।

इस तरहकी कांग्रेसका सङ्गठन भारतीय इतिहासकी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। मैं आपलोगोंसे पूछता हूं, कि हिन्दू-साम्राज्यके उन गौरव-मय दिनोंमें जब विक्रम कैसे राजाओंका यहां शासन था, भिन्न-भिन्न श्रेणीके हिन्दुओंका क्या ऐसा जमाव होना सम्भव था? क्या सब लोग एक राष्ट्रकी भांति सम्मिलित स्वरसे किसी विषय पर बोलनेको तैयार हो सकते थे? इसके बाद मुसलमानी अमलदारीमें—औरोंकी तो बात ही जाने दीजिये, महाप्राण अकबरके ही राज्यकालमें—इस तरहकी एक सभा होनी क्या कभी सम्भव थी, जहां सब जातियों और श्रेणियोंके लोग एक भाषामें और एक तरहकी आशाओं और आकांक्षाओंसे प्रेरित होकर अपने मनोभाव प्रकाशित करें?

अंगरेजी राज्यके सुफल।

फिर, हमारे यहां इस प्रकार एकत्रित होनेका मतलब क्या है? हम लोग यहाँ अपनी भविष्यत् भलाई-बुराईके प्रश्नोंपर विचार करनेके लिये इकट्ठे हुए हैं। यह हमारा सौभाग्य है, कि हम एक ऐसे शासनके नीचे हैं, जो इस तरहके जमावको सम्भव बनाये हुए है। (तालियाँ)

यह महारानी विक्टोरिया और इंग्लैण्डके सभ्य पुरुषोंके

शासनका ही प्रताप है, कि हम यहां बेरोक-टोक जमा होकर, स्वतंत्रताके साथ अपने मनकी बातें निर्भय और निर्बाध रूपसे प्रकाशित कर सकते हैं। ऐसी बात सिवा अंगरेज़ी राज्यके और किसी राज्यमें होनी सम्भव नहीं। अब मैं आप लोगोंसे यह पूछता हूं, कि क्या यह कांग्रेस राज-विद्रोह और विप्लवको जननी है? (नहीं-नहींकी आवाज) अथवा यह अंगरेज़ी राज्यकी नींवको और भी मजबूत बनानेवाली है? (जरूर-जरूरकी आवाज) इसका यही एक उत्तर हो सकता है, जो अभी आप लोगोंने दिया है; क्योंकि हम लोगोंको इस राज्यके द्वारा किये हुए विविध उपकारोंका भली भांति ज्ञान है और यह कांग्रेस उसकी उदारताका एक अन्यतम प्रमाण है। यदि अंगरेज़ी राज्य न होता, तो मैं यहाँ आनेका कदापि साहस न करता; क्यों कि तब तो मुझे इस बातका भय लगा रहता, कि कहीं मेरे पीछे मेरे बाल-बच्चे मार न डाले जायें और मेरा माल-मता लूट न लिया जाये। आप लोग भी शायद ही यहाँ इतनी जल्दी आ सकते; क्योंकि यहाँ आनेमें तो पहले महीनोंका समय लग जाता था। ये सब छोटी-मोटी बातें ही हमें अंगरेज़ी राज्यके असंख्य और उत्तम सुफलोंकी याद करा देती हैं। परन्तु अभी हमारी और भी भलाई होनेको है; जिसके लिये हमें इन अंगरेज़ोंका कृतज्ञ होना

ही पड़ेगा। हमें जो अंगरेज़ी शिक्षा मिली है, वह अंगरेज़ी राज्यकाही एक सुफल है। अंगरेज़ोंने यहाँके शासनकी वागडोर हाथमें लेते हुए सच्चे हृदयसे यह वात कही थी, कि हिन्दुस्तान को हम लोग परमात्माकी सौंपी हुई एक पवित्र धरोहर समझते हैं और हमलोग इसका ऐसा उत्तम शासन करेंगे, जिससे हमारी भी बड़ाई हो और परमात्मा भी प्रसन्न हों। (घोर करतल ध्वनि) ऐसी अवस्थामें जब हम इस राज्यके सुफलोंको प्रत्यक्ष देख रहे हैं और जिन्हें यहां दुहराना महज़ भारतमें अंगरेज़ी सलतनतकी तवारीख पढ़ सुनाना है—तब भला यह कैसे संभव हो सकता है, कि हम सब कुछ समझ-बूझकर भी इस राज्यकी जड़ खोद डालनेकी तैयारी करेंगे? (तालियां)

शासकोंके साथ हमारा सम्बन्ध।

बात बड़ी टेढ़ी है। यहां हमें मनुष्यकी तरह खुले कण्ठ बात कहनी होगी और पहले यह कह देना होगा, कि हम पूरे राजभक्त हैं, अंगरेज़ी राज्यके सुफलोंको जानते-मानते हैं; जो शिक्षा हमें दी जा रही है, या जो नयी रोशनी हमारी आँखोंके सामने लायी गयी है, जिसकी बदौलत हम अंधेरेसे उजेलेमें आये हैं, जो हमें साफ़ दिखा रही है, कि राजा प्रजाके लिये

है—प्रजा राजाके लिये नहीं—यह सब हमने अंगरेज़ोंसे ही पाया है और इसीलिये हम एशियाके निरंकुश शासनके अन्धकारसे निकलकर अंगरेज़ी सभ्यताके स्वातन्त्र्यके प्रकाशमें आनेको उत्सुक हैं। (तालियां) पर सवाल तो यह है, कि क्या गवर्नमेण्ट हमारा विश्वास करती है? क्या वह यह मानती है, कि हम जी से सच्चे राजभक्त हैं और अंगरेज़ी राज्यपर विश्वास और भरोसा रखते हैं? क्या वह इस बातको स्वीकार करती है, कि हम यहाँ अंगरेज़ी हुकूमतको बनी रहने देना चाहते हैं? क्या वह इस बातसे अभिज्ञ है, कि हम तर्क और युक्तिसे उसका आधिपत्य स्वीकार कर चुके हैं और हम मानते हैं, कि हमारा बहुत कुछ स्वार्थ भी उससे सधा है? यदि हमारे शासक कांग्रेसकी सी एक बड़ीसी संस्थाके द्वारा प्रकट किये गये विचारों द्वारा हमारे सच्चे मनोभावोंका पता पा जायें, तो हमारे लिये यह बड़े ही सन्तोषका विषय होगा। सौभाग्यसे हमारे पास कुछ ऐसे प्रमाण हैं, जिनके बलपर मैं आप लोगोंसे कहनेका साहस कर सकता हूं, कि हमारे शासकोंमेंसे कुछ लोग तो अवश्य इस बातको मानने लग गये हैं, कि हम जो कुछ कहते हैं, वह सच है अर्थात् हम अंगरेज़ी राज्यको उलट देना नहीं चाहते और हम जो स्पष्ट बातें कभी-कभी कह देते हैं, वह उभय पक्षकी भलाईके ही विचारसे कहते हैं। उनका भी

यही ख़याल है, जैसा कि लार्ड रिपन भी कह चुके हैं, कि हिन्दुस्तानकी भलाईमेंही इंगलैण्डकी भी भलाई है। पहला प्रमाण आजसे २५ वर्ष पहले सर बार्टर फ्रेअर द्वारा प्रकट हुए वे उद्गार हैं, जो उन्होंने शिक्षितोंके विषयमें निकाले थे। उन्हें देशके लोगोंका बहुत अच्छा ज्ञान था और इसीके लिये उनका शिक्षित सम्प्रदायको दिया हुआ यह प्रशंसा-पत्र बहुत मूल्य रखता है। उन्होंने कहा था,—"आज मैं जहां कहीं जाता हूं, वहीं अंगरेज़ी सरकारकी नीतिके अच्छेर जानकारोंको देख पाता हूं, जोकि हिन्दुस्तानके लिये विचित्र होनेपर भी इस नीतिको ठीक-ठिकानेसे चलानेमें बहुत बहुशता और योग्यताका परिचय देते हैं। ऐसे लोग शिक्षित-सम्प्रदायमें अनेक हैं।" यह प्रशंसा-पत्र हमारी नेकनीयतीका अच्छा सुबूत है और इससे यह बात भली भांति प्रमाणित हो जाती है, कि हम लोग अपने देशकी जनताको शासकोंसे मिलानेवाले मध्यस्थका काम कर रहे हैं। अब देखिये, स्वयं गवर्नमेन्ट-आफ़-इण्डिया क्या कहती है? ८ वीं जूनको १८८० को जो डिस्पैच (खरीता) यहांसे विलायतमें भारत-सचिवके पास भेजा गया था, उसमें भारत-सरकारने लिखा था,—"परन्तु भारतकी प्रजाने बिना डराये धमकाये या हथियारका भय दिखाये ही अंगरेज़ी हुकूमतके सामने सिर झुका दिया है; क्योंकि हम शान्ति और न्यायकी

रक्षा कर रहे हैं तथा यहाँके लोगोंकी भौतिक उन्नतिके लिये बहुत कुछ किया और अब भी करते चले जाते हैं। इसके सिवा हिन्दुस्तानके बाहर या भीतर ऐसी कोई शक्ति भी नहीं दिखलाई देती, जो हमारी जगह छीन सके।" इसके सिवा उसी खरीतेमें यह भी कहा गया था, कि भारतीयोंको इसबात-का विश्वास है, कि बृटिश-शक्तिके सिवा और कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो वर्त्तमान अवस्थामें भारतमें शान्ति रखती हुई आगेके लिये उन्नतिकी राह खोल देने को समर्थ हो। यह तो हुई सर्व-साधारणकी प्रशंसा। अब देखिये, शिक्षित-सम्प्रदायके विषयमें उसी खरीतेमें लिखा था,—"पढ़े-लिखे भारतीयोंको तो यह कल्पना भी दुःखदायिनी है, कि अँगरेज़ी राज्य यहाँसे उठ जाये; क्योंकि वे जानते हैं, कि इसके उठ जानेसे मार-काट, लूट-पाट, अराजकता और गोलमालके सिवा और कुछ नतीजा नहीं निकलेगा।" (करतल-ध्वनि)

अतएव हमें यह माननाही पड़ेगा, कि हमारे शासक हमें पहचानते हैं; हमारे उद्देश्योंको समझते और हमारी राजभक्ति को सच्ची मानते हैं, अतएव यदि कोई अज्ञान, स्वार्थी, उत्तर-दायित्त्वशून्य, दुष्ट-प्रकृति मनुष्य या दल हमारी निन्दा करे, हमपर राजविद्रोहका अपराध लगाये, तो हमें उसकी कुछ भी परवा नहीं करनी चाहिये। अपने शासकों पर पूरा विश्वास

रखते हुए हमें अपनी बातें स्पष्टता, सरलता और नम्रताके साथ निर्भय हो कर कहनी चाहिये, क्योंकि बुद्धिमान और सज्जन-गण अपने शासकोंसे किसी तरहकी रियायत चाहते समय इसी ढंगसे माँगा करते हैं। यद्यपि अँगरेज़ोंने हमारे लिये बहुत कुछ किया है, तथापि उनका कर्त्तव्य पूरा २ पालित नहीं हुआ है—अभी बहुत कुछ करनेको बाक़ी भी है। यही बात वे स्वयं भी कहा करते हैं। वे आप भी आवश्यकताके अनुसार कुछ न कुछ करते रहने की स्पृहा प्रकट करते हैं; परन्तु हमें किस बातकी आवश्यकता है, इसको सोच-विचारकर उनसे कहना हमारा काम है। (करतल-ध्वनि)

महारानीकी जुबिली।

इतना कहकर अब मैं उस आनन्द-दायक प्रसङ्गको छेड़ना चाहता हूं, जो अगले साल हमारे सम्मुख आने वाला है। मुझे तो सबसे पहले इसीका जिक्र करना चाहिये था;परन्तु मैंने जान-बूझकर इसे अबतकके लिये रोक रखा था, क्योंकि पहले मुझे शासकों और शासितोंका सम्बन्ध दिखला देना बहुतही ज़रूरी था। वह प्रसंग महारानीकी जुबिली है। (जोरकी तालियाँ) मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि काँग्रेसने इस विषय-को सबसे पहले प्रस्तावमें रखा है और इस प्रकार भारतीय प्रजाकी ओरसे उदाराशया महारानीको बधाइयाँ देनेकी ठहरा

ली है। (तालियां) हम लोगोंको तो इस प्रसंगपर अपने सौभाग्य-की भी प्रसंसा करनी चाहिये; क्योंकि हमारे ऊपर आधी सदी-तक एक ऐसी सुयोग्या महारानीका शासन बना रहा, जो सब सद्गुणोंकी खान हैं और उस वृहत साम्राज्यपर शासन करनेकी पूर्णतया अधिकारिणी हैं, जिसमें कभी सूर्य अस्त नहीं होता। (घोर करतल-ध्वनि) हममेंसे प्रत्येक भारतीयकी यही शुभेच्छा होनी चाहिए, कि अभी महारानी बहुत-बहुत दिन जियें और ऐसाही उदार तथा ज्ञान-प्रकाशक शासन जारी रखें, जिससे अधिकाधिक सम्मान बढ़े और वे अपनी समस्त प्रजाकी विशेष भक्ति भाजन बनी रहें। (देरतक करतल ध्वनि)

इसके बाद अब यदि मैं थोड़ी देरके लिए काँग्रेसके विचारणीय विषयोंसे बाहरकी कुछ बातें करूं, तो आप लोग कृपा कर मुझे क्षमा करेंगे।

कांग्रेस और समाजिक सुधार।

कुछ लोगोंका कहना है, कि काँग्रेसको सामाजिक सुधार का काम भी अपने हाथमें लेना चाहिए और चूंकि अबतक हम लोगोंने इस बारेमें कुछ भी नहीं किया है, इसलिये बहुतसे लोग हमारी निन्दा भी करते हैं। कांग्रेसके किसी मेम्बर के दिलमें सामाजिक सुधारकी शायद ही वैसी लगन होगी जैसी मेरे दिलमें है,परन्तु महाशय! हर कामके लिये उचित समय

स्थिरित्त थान और समूहका होना आवश्यक हुआ करता है। देश-काल और पात्र देखकर ही कहीं कोई बात छेड़ी जाती है। यहां हम लोग अपने शासकों पर अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं को प्रकट करनेके ही लिये इस राजनीतिक सभामें आकर एकत्र हुए हैं, सामाजिक सुधारपर विचार करनेके लिये नहीं—अतएव यदि सामाजिक सुधारपर विचार न करनेके लिये जो लोग हमें दोष दें, वे हाउस-आफ़-कामन्स को भी गणित या प्राकृतिक विज्ञानके विषयमें विचार न करनेके लिये दोष दे सकते हैं। इसके सिवा यहां भिन्न मतों, सम्प्रदायों और जातियों के हिन्दू, जिनमें कितने ही सामाजिक भेद-भाव हैं,—मुसलमान और क्रिस्तान, जिनके कितने ही फ़िर्क़े हैं—पारसी, सिक्ख, ब्राह्मण आदि सभी तरहके भारतवासी आकर जमा हुए हैं। इस तरहके समस्त जातियोंसे भरे हुए जलसेमें भिन्न-भिन्न जातियों और सम्प्रदायों की त्रुटियों पर कहांतक विचार किया जा सकता है? खास अपनी जाति या सम्प्रदायके अतिरिक्त हम अन्य किसी जाति या सम्प्रदायके रीति-रिवाजों की बात थोड़ेही जानते हैं? इस तरहकी एक सार्वजनिक संस्था भला किसी जाति-विशेष या सम्प्रदाय-विशेषके सुधारों की क्या खाक विवेचना कर सकती है? जिस सम्प्रदायकी बात हो, उसीके अन्तर्मुक व्यक्ति उसकी त्रुटियों और अपेक्षित सुधारोंका

हाल अच्छी तरह जान सकते हैं। राष्ट्रीय महासभाको तो केवल उन्हीं प्रश्नों पर विचार करना चाहिये, जिसमें सारा राष्ट्र प्रत्यक्ष रूपसे भाग ले सकें और इस तरहके सामाजिक सुधार तो जातीय संस्थाओंके ही हाथमें छोड़ देने चाहियें, वेही इन्हें भली भाँति निपटा लेंगी। इसका मतलब यह नहीं है, कि हम लोग इन सुधारोंका कुछ महत्त्व नहीं समझते। जिसके आंख-कान हैं, वह प्रत्येक जाति या सम्प्रदायकी भलाईकी बात सोचे विना नहीं रह सकता। एक वार जहां आप अपने कार्यों पर, अपने कर्त्तव्योंपर और अपनी जवाबदेहियोंपर विचार करने लगेंगे, वहां आपको अपने पड़ोसियों और अपनी जातिवालों का खयाल आये विना न रहेगा और आप अपनी चारों ओर देखकर अपनी त्रुटियों पर अवश्य ही लक्ष्य करने लग जायेंगे। हमें यह अच्छी तरह मालूम है, कि आजकल प्रत्येक जाति अपनी विवेक-बुद्धिके अनुसार अथवा जितनी शिक्षा उसके अन्तर्गत मनुष्योंको मिली है, उसके अनुसार, अपनी जातीय उन्नतिका कार्य बड़े ठिकानेके साथ कर रही है। जहाँतक मैं समझता हूं, इस प्रसंगमें किसी खास जातिका नाम लेनेकी कोई जरूरत नहीं है। मुसलमान भाई इस बातको अच्छी तरह जानते हैं, कि उनके सजातीयगण शिक्षाका अभाव दूर करनेके लिये कैसा प्रयत्न कर रहे हैं, क्योंकि इस जातिको सबसे अधिक

शिक्षाकी ही आवश्यकता है। हिन्दूगण भी यथाशक्ति अपनी उन त्रुटियोंको दूर करनेमें लगे हुए हैं, जिनका दूर किया जाना वे आवश्यक समझते हैं। शायद यहां किसी जातिके ऐसे सुयोग्य और सर्वोत्तम मनुष्य आये विना नहीं रहे हैं, जो अपने सजातीय बन्धुओंकी सामाजिक, धार्मिक और नैतिक स्थितिके सुधारकी कामना न रखते हों और उस कामनाको सफल करनेकी चेष्टा न करते हों। परन्तु एक दूसरी जातिवालेको तो उन अभाव-आवश्यकताओंकी बात मालूम ही नहीं हो सकती। अतएव सब सुयोग्य मनुष्य अपने-अपने सम्प्रदायकी उन्नतिका आपही प्रयत्न करें, यही उचित है। कांग्रेस जैसी एक सार्वजनिक संस्थाके प्रदेशसे यह बात बाहरकी है।

इंग्लैण्डपर विश्वास।

अब मैं यहाँ गत कांग्रेसके विषयमें कुछ कहना चाहता हू। गत अधिवेशनके बादही बहुत कुछ उन्नति देखनेमें आयी है, जिससे यह विश्वास होता है, कि यदि हम उचित और न्याय अधिकारोंके लिये प्रार्थना करें, तो बृटिश-सरकार हमारी माँगें अवश्य पूरी करेगी। अतएव हम लोगोंको इंग्लैण्डकी न्याय-बुद्धिपर विश्वास करना चाहिये और यह समझ रखना चाहिये, कि अँगरेज-जाति अपनी नेक-नीयती साबित करनेके लिये बहुत कुछ दे सकती है।

रायल कमिश्न।

गत वार कांग्रेसमें हम लोगोंने एक राजकीय कमिशन नियुक्त करनेका प्रस्ताव किया था; किन्तु दुर्भाग्यका विषय है, कि इंगलैण्डके प्रभुओंने हमारी यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की। उनका कहना है, कि इससे यहाँके अधिकारियोंकी मान-मर्यादा में बट्टा लग जायेगा और सारी मशीनके पुर्जे बिखर जायेंगे। परन्तु ऐसा कहना तो हमारे भारतीय प्रभुओंकी योग्यताका निरादर करना है। मैं लार्ड डफरिन जैसे परिपक्व अनुभववाले मनुष्यको देखकर कह सकता हूं, कि उनकी तरह एक विशाल साम्राज्यके सुचतुर शासकका दिल यह सुनकर हरगिज़ नहीं काँप सकता, कि यहाँकी स्थितिका पता लगाके लिये एक राजकीय कमिश्न नियुक्त होने वाला है। यह युक्ति एक बारही लचर है और हम लोग यह बात एक बार फिर कह देना चाहते हैं, कि विलायतमें बैठी हुई पर्लामेन्टकी-कमिटी वहीं के गवाहोंके बयान सुनकर हिन्दुस्तानकी हालतका पता हरगिज़ नहीं पा सकती। यह बात स्पष्ट है, कि यहां आकर आँखों सब देख लेनेपर उन्हें जितनी बातोंका पता मिल सकता है, उतनी बातोंका पता वहाँ महज़ कानों सुनी बातोंसे नहीं लग सकता। खैर, अभी तो इतनाही सन्तोष है, कि पार्लामेन्ट का विचार है, कि एक कमिटी स्थापित की जाये; परन्तु यह

कमिटी एक ओर तो हमारे स्थानीय अधिकारियों का हाथ बहुत कुछ रोकती है और दूसरी ओर हमें भी अपनी वास्तविक आकांक्षाओं को प्रकट करनेसे रोकती है।

पश्चिमोत्तर प्रदेश* और पंजाबके लिये व्यवस्थापिका सभाएं।

हम लोगोंने एक दूसरे प्रस्तावमें पश्चिमोत्तर प्रदेश और पंजाबके लिए व्यवस्थापिका सभाओंकी व्यवस्था करनेकी प्रार्थना की थी। खुशीकी बात है, कि हालमें गवर्नमेण्टने पश्चमोत्तर-प्रदेशको व्यवस्थापिका सभा प्रदान कर दी है। आशा है कि यह अधिकार अन्य प्रान्तोंको भी दिया जायेगा।

पब्लिक सर्विस-कमिशन।

चौथा प्रस्ताव सरकारी नौकरियोंके बारेमें था। उसमें भी हमें काफ़ी उन्नति दिखाई दे रही है। आज कल पब्लिक सर्विस-कमिशनकी बैठकें हो रही हैं और अगर किसी बातसे गवर्नमेण्टकी नेकनीयतीका हमें पता लग सकता है, तो वह

*नोट—वर्तमान संयुक्त प्रान्त ही पहले पश्चिमोत्तर प्रदेश कहा जाता था। अब तो पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त नामका एक नया सूबा काबुलकी सरहदके पास बना दिया गया है। जिस समयकी यह वक्तृता है, उस समय यह सरहदी सूबा पंजाबमें शामिल था।

इस कमिशनका संगठनही है। हमारे परम उदार वाईसराय महोदयने पूनेमें जो बातें कही थीं, वे शायद आपको याद होंगी। उन्होंने कहा था,—

"जो हो, मैंतो कहता हूं, कि मैं आरम्भसेही इस तरहकी एक कमिटी या कमिशन बैठानेके लिए पूरी कोशिश कर रहा हूं और प्रत्येक वार इंगलैण्डकी गवर्नमेण्टमें हेर-फेर होनेके साथ ही-साथ मैं भी सेक्रेटरी-आफ्-स्टेटको इस तरहका एक कमिशन नियुक्त करनेके लिए लिखता रहा हूं। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है, कि अन्तमें मेरे वार-वार लिखनेका नतीजा निकल आया और महारानीके वर्त्तमान मन्त्रियोंने मेरी वर्षोंकी कहा-सुनीपर ध्यान देकर कारवाई करनी मुनासिब समझी। जहांतक मैं समझता हूं, मेरे इस थोड़े दिनोंके शासन-कालमें मैं या भारतकी सरकार इस सवालके बारेमें इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकती थी। यह सवाल इस देशके लोगोंको बड़ाही चंचल कर रहा था और पढ़े-लिखे भारतीयोंको अच्छी-अच्छी नौकरियां नहीं मिलती, यह कहः कर लोग हमें अन्यायका भागी बनाया करते थे। अब लीजिये—अनुसंधानका मार्ग खोल दिया गया। अब यह आप लोगोंका काम है, कि अपनी तर्कपूर्ण युक्तियों और पुष्ट गवाहियोंसे अपने उद्देश्यको सफल कर लीजिये।

अगर आप लोगोंको इस कार्यमें सफलता हुई, तो सच जानिये, सबसे अधिक प्रसन्नता मुझे ही होगी। रही और-और बातें जिनका अखबारोंमें ज़ोर-शोरसे आन्दोलन होता रहा है, या जिनका उल्लेख आपके अभिनन्दनपत्रोंमें है अथवा जिनके विषय में आपकी सभा-समितियाँ चेष्टा करती रही, हैं—उनके विषय-में भी मैंने अनुसंधान करनेकी पूर्ण चेष्टा की है।"

लार्ड डफ़रिन और पब्लिक-सर्विस कमिशन।

ऊपरकी वक्तृतासे ही हमें अपने वर्त्तमान वाइसरायके इरादों और इस कमिशनके बनाये जानेके बारेमें की जानेवाली कोशिशोंका पता चल जाता है। इससे उनकी नेकनियती और हमारे साथ हमदर्दी झलकती है। जब मैं लार्ड डफ़रिनको याद करता हूं,—न केवल वर्त्तमान राजप्रतिनिधिके रूपमें—बल्कि उनके अन्यान्य सद्गुणोंका विचार करके—तब मुझे इस बातका विश्वास ही नहीं होता, कि उनका जैसा मनुष्य भी किसी जातिकी भलाई या राजनीतिक उन्नतिकी साधनाके सम्बन्धमें सहानुभूति-शून्य होगा। लार्ड डफ़रिनने 'टाइम्सको' जो पत्र लिखे थे, उनसें कुछ थोड़ेसे अंश चुनकर मैंने विलायतके हालबर्ग-टाउनहालकी सभामें सुनाये थे। आपमेंसे बहुतोंको वे अंश

याद भी होंगे। इसीसे तो यह बात मेरे दिमागमें नहीं आती, कि ऐसा सहृदय मनुष्य भी क्यों कर हमारे प्रति सहानुभूति-शून्य हो सकता है। इस विषयमें मैं केवल इतनाही कहूंगा, कि चूंकि हमें वाइसरायों और गवर्नरोंकी इच्छाओं और विचारोंको जानते रहनेकी बड़ी लालसा रहती है, इस लिये मैंने अपने कई मित्रोंसे, जो सत्य बातोंका पता रखते हैं और जिनपर मैं पूरा पूरा विश्वास कर सकता हूं, सुना है, कि हमारे वर्त्तमान वाइसरायके विचार बड़े ही उदार हैं और वे शिक्षित समुदायकी इस मांगको देखकर, कि हमारा भी अब देशकी सरकारमें हाथ होना चाहिये,—न तो कुढ़ते हैं, न डरते हैं; उल्टा वे इसे बहुत ही अच्छा समझते हैं। वाइसरायकी हैसियतसे उनको हर बातको हर तरफसे देखकर वही रास्ता अख़्तियार करना पड़ता है, जो उचित और सुरक्षित हो। तोभी हम लोगोंको इस बातका विश्वास रखना चाहिये, कि वे हमारे साथ सच्ची और गहरी सहानुभूति रखते हैं तथा हमें उनके हाथों अपनी भलाई होनेकी आशा भी करनी चाहिये।

विलायतका अधिकारी-वर्ग।

अब प्रश्न यह है, कि क्या विलायतमें बैठे हुए भारतके स्टेट-सेक्रटरी और अन्यान्य अधिकारी-वर्ग भी हमपर ऐसी ही दया और हमारी मांगोंके बारेमें ऐसाही ख़ुश-ख़याल रखते हैं?

कमिशनका प्रस्तावही स्टेट-सेक्रेटरीके इरादोंको जाहिर कर देता है। उसमें लिखा है,—"अपने उद्देश्यके अनुसार यह कमिशन ऐसी पक्की स्कीम तैयार करेगा, जिसमें अधिक रद्द-बदलकी जरूरत न हो और वह भारतीयोंको अच्छी-अच्छी नौकरियां दिलानेकी व्यवस्था करनेमें पूरे इन्साफ़से काम लेगा।"

इससे हमें मालूम हो जाता है, कि हमारे सबसे बड़े अधिकारीकी हमारी मांगोंके बारेमें क्या इच्छा है? अब इस अनुसन्धानके लिये हमलोग उनको धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं, कि हम भी सब किसीको अपनी माँगोंके उचित होनेका विश्वास दिला सकेंगे और यह साबित कर सकेंगे, कि हमारी दलीलें सही हैं।

हमारे शासकोंकी इच्छा।

हमारे शासकोंकी इच्छा क्या है, इसे जाननेके लिये आजसे ५३ वर्ष पहले चले जाइये, जबकि स्वयं हमी लोग यह नहीं जानते थे, कि हमारे अधिकार क्या हैं! उसी समय इंग्लैण्डके राजनीतिक पुरुषोंने, अपनी स्वातन्त्र्य-प्रियतासे प्रेरित होकर, हिन्दुस्तानके प्रति इंग्लैण्डकी नीति कैसी होनी चाहिये, यह बात बतलायी थी। उस समय बड़ी लम्बी-चौड़ी और मार्केकी बहसें हुईं थीं—हर पहलूसे इस सवाल पर विचार किया गया था। प्रजाको अधिक राजनीतिक अधिकार प्रदान करनेकी

हानियों और हिन्दुस्तानके लोगोंके अयोग्य होनेपर भी विचार हुए बिना न रहा; पर अन्तमें सबका सार यही निकला, कि इंग्लैण्डको भारतके प्रति न्याय-पूर्ण नीतिही रखनी चाहिये, सारी मनुष्य जातिके छठे भागको हर तरहसे उन्नत बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। भारतको हमें (अर्थात् अंगरेजोंको) परमात्माकी सौंपीहुई एक धरोहर समझनी चाहिये, जिसकी रक्षा करनेमें हम कर्त्तव्यके परिष्कृत पथसे कभी विचलित न होंगे। उस अवसर पर मि० मेकालेने तो यहां तक कह डाला था, कि हिन्दुस्तान हमारे हाथसे चला जाये, सो अच्छा; पर हां, अपना शासन आप करने लायक़ हो, तभी निकले; लेकिन यह तो मुझे गवारा नहीं, कि हिन्दुस्तानकी प्रजा हमारी गुलाम बनी रहे और लोग अंगरेज़ अफ़सरोंकी जूतियां झाड़ते हुए खुसामदी टट्टू बने रहें। (करतल-ध्वनि) यही तो १८३३ की नीतिका सार है। उस साल जो क़ानून बना, उसमें साफ़ लिखा गया, कि—"उक्त देशोंके अधिवासी अथवा महारानीके राज्यमें जन्म लेनेवाला कोई व्यक्ति, किसी धर्म, जन्म-स्थान, वंश, वर्ण या इसी तरहके अन्य विभेदोंके कारण कम्पनीके अधीन कोई स्थान, पद या नौकरी पानेसे वञ्चित न होने पायेगा।"

इससे अधिक न हम मांगते हैं, न मांग सकते हैं। हम इस कमिशन या गवर्नमेन्टसे केवल यही इतना चाहते हैं, कि

आजसे ५० वर्ष पहले, जब हम निरे छिग्रया के ताऊ थे और यह भी नहीं जानते थे, कि हमें क्या मिला है और क्या माँगना चाहिये, उस समय जो दान ग्रेट-ब्रिटेनने हमें बिना माँगे दे डाला था, उसेही अब आपलोग अमलमें लाना शुरू कर दें —कोरे कागज़पर ही लिखा न रहने द । (करतल-ध्वनि)।

राजकीय घोषणा।

खैर, इसके बादही एक विपत्तिकी आँधी आयी और हम सब लोग बड़े कष्टमें पड़े। ईश्वरकी दयासे इसमें अँगरेज़ोंकी जीत रही। जब इन लोगोंने अपने तमाम सङ्कट हटा लिये, कुल दुश्मनोंको ठिकाने लगा दिया, तब अँगरेज़-जाति एक बार फिर वही उदार, पवित्र और उच्च भाव लिये हुई सामने आयी तथा हमारे सामने वही प्रसिद्ध घोषणा रखी, जोकि १८३३ के कानून से भी बढ़कर निकली तथा जिसे हमें अपने स्वतंत्रताका एक अभय वर समझना चाहिये। इस घोषणाकी बातोंको यहाँ दुहरानेकी कोई ज़रूरत नहीं है; क्योंकि उसकी एक-एक बात हम सबके दिलोंपर खुदी हुई है; परन्तु यह हमारी स्वाधीनताकी ऐसी अभय-वाणी है, कि हमें तो प्रत्येक बालकको, जो बोलना सीख रहा हो, इसे कण्ठस्थ करा देना चाहिये। इस घोषणामें १८३३ वाली नीतिकी पुष्टिही नहीं की

गयी है, बल्कि कुछ और भी अधिकार दिये गये हैं। इसमें हमारी वर्त्तमान और भविष्यत् आकांक्षाओंके बीज निहित हैं। (तालियां) अब हमें केवल गवर्नमेन्ट और कमिशनके सामने जाकर इसे दुहरा देना है और उन्हें यह बतला देना है, कि हम जो कुछ चाहते हैं, वह तो हमें इस घोषणा द्वारा पहले से ही मिला हुआ है—अब हम केवल यही चाहते हैं, कि उस घोषणामें जो कुछ शब्दोंमें लिखा हुआ है, वही अब कार्य्य-रूपमें परिणत किया जाये। (तालियाँ) मैं यहाँ एक-एक बात गिनाना नहीं चाहता; क्योंकि यदि मैं इसीका ब्यौरेवार वर्णन करने लगूँ, तो घन्टों लगातार बोलता रह जाऊँ और इतने पर भी अपने जीभर सब बातें शायद ही सुना सकूँगा। मैंने जितना कुछ कहा है उससे हमारे शासकोंको मालूम हो जा सकता है, कि हमारा दावा कितना सच्चा और मजबूत है तथा यह भी मालूम हुए बिना नहीं रह सकता, कि यह मज-बूती स्वयं उन्हींकी की हुई है। (तालियाँ) अतएव, अब तो मैं इस विषयको यहीं छोड़ देना ठीक समझता हूँ।

व्यवस्थापिका सभाओंका विस्तार।

दूसरा प्रस्ताव व्यवस्थापिका सभाओंकी उन्नति और विस्तारके सम्बन्धमें है। इस विषयमें मेरे पहलेके अध्यक्षों इतनी बातें कह डाली हैं, कि अब मेरे लिये बहुत कुछ कहने

को रही नहीं गया। मैं इस विषयमें केवल इतनाही कहना आवश्यक समझता हूँ, कि हम लोग इस विषयमें और भी अग्रसर होनेकी आशा रखते हैं और एक ऐसी स्कीम तैयार करने ..ा विचार कर रहे हैं, जिससे कौन्सिलोंमें हमारे चुने हुए प्रतिनिधि पर्याप्त संख्यामें पहुंचे। मैं यह कहनेकी जरूरत नहीं समझता, कि इससे गवर्नमेण्टको ही लाभ होगा, क्योंकि अभी तो वह चाहे जो कानून पास कर देती है और हम लोग उससे नाराज होनेके सिवा कभी खुश नहीं होते। इसमें शक नहीं, कि आजभी कौन्सिलोंमें हमारे अपने आमदनी मौजूद हैं, पर हमें उनसे किसी मामलेमें कैफ़ियत तलब करने का कोई अख़्तियार नहीं है, क्योंकि वे हमारे चुने हुए प्रतिनिधि नहीं हैं। इसलिये सरकारके बनाये हुए किसी कानूनके बारेमें हमारे मनमें जो असन्तोष पैदा होगा, उसे वह किसी तरह दूर नहीं कर सकती। अगर इन सभाओंमें हमारे भी प्रतिनिधि होंगे, तो यदि कोई ऐसा अप्रिय क़ानून बन जायेगा, जिसे हम पसन्द न कर सकें, तो गवर्नमेन्ट भी प्रजाकी नाराजीसे बहुत कुछ बच जायेगी, क्योंकि उस हालत में वह कह सकेगी, कि यह तुम्हारेही आदमियोंकी सलाह से बनाया गया है, हम लोगोंने उन्हें तुम्हारा प्रतिनिधि समझ कर उनकी इच्छाको अनुकूल पाकर इस क़ानूनको पास कर

डाला है। इसके सिवा अंगरेज़ अफ़सर चाहे कितने भी बुद्धिमान् और चतुर क्यों न हों—और तो और, स्वर्गसे उतरे हुए फरिश्ते ही क्यों न हों—परन्तु वे कदापि हम लोगोंकी तरह किसी बातको देख-सुन या सोच-समझ नहीं सकते। (तालियाँ) यह हम उनकी कोई बुराई नहीं करते; बल्कि यह तो स्वभाविक बात है। दूसरी बात हो ही नहीं सकती। इसलिये यदि आपके मनके भावोंको प्रकट करने वाले प्रतिनिधि उक्त सभाओंमें पहुंचेंगे, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि आपको कुछ हितकारिणी और सन्तोषदायिनी वस्तुएँ भी प्राप्त हो जायंगी और इसमें कोई सन्देह नहीं, कि जिससे आपका हित और सन्तोष होगा, उससे सरकारका भी निश्चय ही होगा।

पार्लमेन्टमें प्रतिनिधि पहुँचाना।

इसी सिलसिलेमें मैं पार्लामेण्टमें भारतीय प्रतिनिधि पहुंचानेका प्रसङ्ग भी छेड़ देना अच्छा समझता हूं। यहाँकी सरकार किस ढंगसे, किस रीतिपर कार्य करे,—इसका निश्चय विलायतकी पार्लामेण्टही करती है। सवाल चाहे व्यवस्थापिका सभाओंका हो या सरकारी नौकरियोंका; परन्तु किसी विषयका सुधार तबतक नहीं हो सकता, जबतक पार्लामेण्टके

कानोंपर जूं नरेंगे और वह वर्त्तमान कानूनोंमें फेर फार न करे; परन्तु दुःखकी बात तो यह है, कि पार्लामेण्टमें एकभी ऐसा भारतीय नहीं है, जो हिन्दुस्तानके भाव यहांवालोंपर प्रकट कर सके। यह बात बड़े ज़ोरोंसे पार्लामेण्टके कई अंगरेज़ मेम्बरोंने मुझसे कही थी और वे इसे एक बड़ी भारी कमी समझते हैं, कि इस पार्लामेण्टमें कोई भारतीय मेम्बर नहीं है।

भारतकी दरिद्रता।

जो सब प्रश्न इस कांग्रेसके सम्मुख उपस्थित किये जाने वाले हैं, उनमें एक भारतकी घोर दरिद्रतापर कांग्रेसकी ओरसे गहरी सहानुभूति प्रदर्शित करना भी है। लोग कहते हैं, कि यदि हमलोग सरकारी नौकरियोंमें घुसनेकी चेष्टा करते हैं, तो केवल कुछ पढ़े-लिखे लोगोंकी इच्छा पूरी करनेका प्रयत्न करते हैं। पर यदि आप इस प्रश्नपर अच्छी तरह विचार करेंगे, तो आपको मालूम होगा, कि इस तरह बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियाँ पानेकी चेष्टा कर, हम भारत-व्यापिनी दरिद्रताका ही सवाल हल करनेकी कोशिश करते हैं। हाँ, एक बातके लिये मैं अपने आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। मैं अपनी ओरसे भारतकी दरिद्रताका प्रमाण आपको नहीं देता; बल्कि दो वर्ष पहले सर ईवलिन बारिंगने जो कहा था; वह आपको

सुना देना चाहता हूं। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था,—"भारतवर्षके लोग बड़े ही दरिद्र हैं। हमारे वर्त्तमान अर्थ-मन्त्री भी यही बात कहते हैं। परन्तु हमारे दुःखोंके बहुतसे कारणोंमें यही एक कारण सबसे प्रधान है, कि हम परम दरिद्र हैं। यह एक शुभ चिन्ह है, कि हमारे अंगरेज़-प्रभु भी इस बातको समझने लगे हैं। करेन्सी (मुद्रा-प्रचलन) के बारेमें जो बहस हुई थी, उसके सम्बन्धमें हिन्दुस्तानके सेक्रेटरी-आफ़-स्टेटने एक पत्र २६ वीं जनवरी १८८६ को ख़ज़ानेके उच्च अधिकारीको लिखा था। उस पत्रमें उन्होंने कुछ ऐसी बातें लिखी थीं, जिनसे प्रमाणित होता है, कि हमारे शासक अब इस समस्या का स्वयं अनुभव करने लगे हैं और इसे हल करनेकी चेष्टा भी करना चाहते हैं—अब वे शुतुरमुर्गकी तरह इस ओर आंखें बन्द किये रखना नहीं चाहते। जब पहले-पहले मैं ने भारतकी दरिद्रताकी बात उठायी थी, और यह कहा था, कि बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें देकर विलायती अफ़सरोंको शासन विभागमें रखनेसे ही यह दरिद्रता हमारे सिर घहरायी है, तब कितने लोग मुझपर हँसे थे परन्तु आज हमारे सबसे बड़े अधिकारी भी इसी विचारका समर्थन करते हैं। उक्त पत्रमें हमारे स्टेट-सेक्रेटरीने लिखा था,—

"कर-नियुक्ति और मालगुज़ारीके मामलोंमें हिन्दुस्तानकी

हालत कुछ विचित्र ढंगकी है, इसलिये नहीं, कि हिन्दुस्तानके लोग हर तरहके परिवर्तनसे घबराते हैं, जैसा कि प्रत्येक बार नया कर लगाये जानेपर देखनेमें आता है; बल्कि वर्त्तमान शासनकी रीतिके कारण भी है, जिनके अनुसार सब विदेशी ही शासन और सेना-विभागोंमें घुसे हुए हैं। नये करोंकी चिन्ताकी कल्पना उन लोगोंको नहीं हो सकती, जिन्हें भारतकी सरकारका न तो ज्ञान है, न उसमें उनका कुछ हाथ है; परन्तु इन लोगोंको तो इस बातकी बड़ी फिक्र होती है, जिनके ऊपर इस देशके शासनका उत्तरदायित्व है, ये नये कर विदेशी शासनके अवश्यम्भावी परिणाम हैं और इनसे जो रुपया वसूल होता है, वह प्रायः भारतसे बाहरही खर्च होताहै। यह एक प्रकारका राजनीतिक सङ्कट है।"

हमें इस बातका विश्वास रखना चाहिये, कि इंगलैण्डकी प्रजा अवश्यही यह सवाल करेगी, कि सौ वर्ष अंगरेज़ी शासनके नीचे रहकर भी हिन्दुस्तानके लोग इतने दरिद्र क्यों हैं और भारतके प्रभु-लोग भी यह देखकर अवश्य ही आश्चर्य प्रकट करेंगे कि जहां वे हिन्दुस्तानको धनकी खान समझे बैठे थे, वहाँ वह ऐसा दीन-दरिद्र क्यों निकला?

भारतकी प्रसिद्ध सम्पत्ति-शालिता।

सच पूछिये, तो हमारे परम दुर्भाग्यसे, भारतकी प्रसिद्ध सम्पत्ति-शालिता बड़ी भ्रममें डालनेवाली है और जबतक कौनसिलोंमें हमारे सच्चे प्रतिनिधि नहीं पहुंचते और, हमारे प्रभुओंको यह नहीं बतलाते, कि वे क्यों हमारी जड़ खोद रहे हैं और हमारी दरिद्रता को दूर करनेके लिये सरकारपर दबाव नहीं डालते, तब तक कुछ भी नहीं हो सकता। बृटिश-राज्यसे हमारा जो कुछ हित हुआ है या हमारे शासकोंके हमारे विषयमें जो ऊंचे-ऊंचे लक्ष्य और उद्देश्य हैं, वे सब हवा हो जायेंगे, यदि हमारा देश इसी तरह दिन-दिन दरिद्रताके समुद्रमें डूबता चला गया। पहले कुछ लोग मुझे छिद्रान्वेषी और दोषदर्शी ही बतलाया करते थे; पर अब तो हमारे प्रभु भी यह स्वीकार कर रहे हैं, कि हम बड़े दरिद्र हैं। अतएव कांग्रेसका यह उचित और एकान्त कर्त्तव्य है कि इस देशव्यापिनी दरिद्रताको दूर करनेके प्राथमिक उपाय काममें लाये जानेका उद्योग करे और इस विषयमें अपने विचार खूब स्पष्टतया प्रकट करे। मैं इस बातको जानता हूं, कि इंगलैण्डको भारतका हित हृदयसे स्वीकार है और यदि हम लगातार उच्च स्वरसे इंगलैण्डके बहु-व्यस्तकानोंमें अपनी आवाज, पहुंचाते रहें, तो हमारा कहना कभी व्यर्थ न जायेगा।

उपसंहार।

आगामी तीन दिनोंमें कांग्रेस-कमिटीके सामने और भी बहुतसे प्रश्न विचारार्थ उपस्थित किये जायेंगे और मैं प्रतिनिधियोंके नामही देखकर कह सकता हूं, कि उन प्रश्नोंपर बड़ी ही नम्रताके साथ, उचित सीमाके भीतर रहकर विचार किया जायेगा। मैं आशा करता हूं, कि समस्त प्रतिनिधिगण इस राज्यके लाभोंको अवश्यमेव हृदयंगम करते हैं, जिसमें हम सब लोग रहते हैं। साथही यह जानते हुए, कि हमारे शासक हमारी भलाईसे मुंह मोड़े हुए नहीं रह सकते, हमलोगोंको अपने समस्त कार्य खूब साहसके साथ करने चाहिये। मैं जहांतक समझताहूं, अब मुझे बहुत कुछ कहनेका काम नहीं हैं। आप लोगोंको मालूम ही होगा, कि गतवर्ष जिन-जिन विषयोंपर विचार किया गया था, उनमेंसे किस-किस विषयमें हमने कितनी उन्नति की है। इसी तरह मैं आशा करता हूं, कि गतवर्षके शेष प्रस्ताव और इस सालके भी प्रस्ताव इसी तरह सफल होंगे। कमसे कम मुझे तो आशा है, कि यदि हमलोग अपने आपके प्रति सच्चे साबित हों और जैसी उदार शिक्षा हमने पायी है, उसके अनुसार अपनी आत्माके प्रति न्याय कर सकें, बोलनेकी जो स्वतंत्रता मिली है, उसको काममें लाकर

स्पष्ट भाषण कर सकें, तो अवश्यही सरकार हमारी बातें सुनेगी और हमारी उचित मांगें पूरी करेगी। (घोर करतल-ध्वनि)

अन्तमें मैं आप लोगोंको मुझे इस आदरास्पद आसनपर बिठानेके लिये एकबार फिर हृदयसे धन्यवाद देता हूं और बंगाली भाइयोंकी इस खातिरदारीके लिये समस्त प्रतिनिधियोंकी ओरसे उन्हें भी धन्यवाद दिये देता हूं।

१—कलकत्तेकी २२ वीं कांग्रेसका भाषण।

(सन् १९०६ ई०)

[अत्यन्त वृद्ध और रुग्ण होनेके कारण मि० नौरोजी अपना भाषण आपही पढ़कर न सुना सके; बल्कि महामति गोखलेको पढ़कर सुनाना पड़ा था। आरम्भमें आपने कुछ शब्दोंमें स्वागतकारिणीके अध्यक्ष राजा प्यारीमोहन मुकर्जी और सर रासबिहारी घोष आदिको धन्यवाद देते हुए कुछ सम्माननीय कांग्रेस—कार्यकर्त्ताओंकी मृत्युपर दुःख प्रकट किया था। इसके बाद माननीय गोखले महोदयने आपका छपा हुआ भाषण पढ़ सुनाया।]

---

* हमने नवीं कांग्रेसका भाषण जान-बूझकर छोड़ दिया है। पुरानी कांग्रेसके दृष्टिकोणका पता दूसरी कांग्रेसके ही भाषणसे लग जाता है, अतएव ९ वें अधिवेशनमें कांग्रेसके उस जोरका कहां पता चल सकता है, जो

नौरोजी

"सुशासन कभी प्रजातन्त्र-शासनकी बराबरीका नहीं हो सकता।"—सर हेनरी कैम्पवेल-वैनरमैन, (१६०५)।

"पर मैं यह बात अवश्य कहूँगा, कि हमारी समस्त जातीय महत्ता, शक्ति और आशाका आधार, हमारे राजनीतिक सिद्धान्त ही हैं।"—मि० जान मार्ले, (१६०१)।

"परन्तु महाशयों! यदि आप लोग आर्थिक प्रश्नोंको लाघसीटेंगे, तो मुझे कहना पड़ेगा, कि आप अपने राष्ट्रीय अस्तित्वके जीवन, हृदय और मर्म-स्थानका स्पर्श करना चाहते हैं।"—मि० जान मार्ले, (१६०३)।

"महिलाओं और सज्जन-महोदयों!

आप लोगोंने जो आज मुझे तीसरी बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका सभापति बनाया है, उसके लिये मैं आप लोगोंको हृदयसे धन्यवाद देता हूं और आशा करता हूँ, कि आपलोग

१६०६ वाले अधिवेशनमें था। वह जमाना स्वदेशी और बायकाट-आन्दोलनकी धूमधामका था, और कांग्रेसमें 'नरम' और 'गरम' नामकी दो पार्टियाँ कुछ कालके लिये पैदा हो गयीं। नरमोंने इस कांग्रेसका सभापति दादाभाईको नरम ही समझकर चुना था; पर गरम-दलके सर्वश्रेष्ठ नेता लोकमान्य-तिलककी ही तूती बोल गयी और नौरोजी महोदयने सर्व-प्रथम 'स्वराज्य' कल्पनाको जन्म दिया। इसमें सन्देह नहीं, कि इसमें लोकमान्यका भी काफ़ी हाथ था और बूढ़े राजनीतिज्ञ मि० नौरोजीको उनके बहुतसे विचारोंको मान देना ही पड़ा। इसीसे हमने यह भाषण दे दिया है।

कृपाकर मुझे सप्रेम सहायता और सहयोग प्रदान करेंगे।

आज मुझे बड़े दुःखके साथ कहना पड़ता है, कि मिस्टर डब्ल्यू० सी० बनर्जी जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी, मि० आनन्दमोहन बसु और वीर राघवाचार्यके स्वर्गवाससे भारतको बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी है। इसके लिये मैं अपना हार्दिक शोक प्रकट करता हूं।

साथ ही मैं संयुक्त-आइरिश-लीगकी पार्लमेन्टीय शाखा, ब्रेकफ़ास्ट मीटिंग, नार्थलैम्बेथ लिबरल पेण्ड रैडिकल क्लब और नेशनल डिमाक्रेटिक लीग आदि संस्थाओंको भी, जिन्होंने बड़े उत्साहसे प्रेम-पूर्वक मेरी सहायता की है, सकृतज्ञ हृदय से धन्यवाद देता हूं।'

सच पूछिये, तो अब तक कांग्रेस बालिका थी, प्रौढ़त्वको प्राप्त होनेवाली कांग्रेसका यह पहला ही अधिवेशन है। अतएव इसी समय हम लोगोंको बड़ी विचार-बुद्धिके साथ इस विषय का विवेचन करना होगा, कि भारतीयोंकी स्थिति क्या है और उनका भविष्य क्या होना चाहिये।

इस प्रश्नपर विचार करते समय मैं अतीतकी बातोंका रोना नहीं रोया चाहता। मैं केवल भविष्यकी ही बातें करना चाहता हूं।

कांग्रेसका कार्य-क्रम दो भागोंमें विभक्त है:—पहला और

सबसे आवश्यक प्रश्न तो यह है, कि भविष्यमें भारतका शासन किन नीतियों और सिद्धान्तोंके अनुसार होना चाहिये।

दूसरा यह, कि जो शासन इस समय प्रचलित है, उसपर दृष्टि रखना और समयपर उसमें सुधार और परिवर्त्तन किये जानेकी आवश्यकता बतलाते रहना। यह काम तबतक जारी रखना, जबतक वर्त्तमान शासन-प्रणाली एकदम बदल न जाये और ऊपरके कार्यकी सिद्धिके लिये हम वर्त्तमान शासनको उचित सिद्धान्तों और नीतियोंके आधार पर होता हुआ न देखें।

मैं अपने भाषणमें प्रधानतया पहली बातपर ही अधिक बल दूँगा, अर्थात् यह बतलाऊँगा, कि भविष्यत्‌में भारतके शासनकी नीति और सिद्धान्त कैसा होना चाहिये।

विचारने की बात है; कि बृटिश साम्राज्यके भीतर हम भारतवासियोंका स्थान क्या है? फिर यह सवाल पैदा होता है, कि हम बृटिश-प्रजा हैं, कि नहीं? मेरा कहना तो यह है, कि हमलोग अवश्य ही बृटिश-प्रजा हैं और हमें बृटिश-प्रजाके समस्त अधिकारोंको प्राप्त करनेका दावा करना चाहिये।

अब मैं आपलोगोंके सामने उन सब कारणोंको उपस्थित करता हूं, जिनके बलपर मैं यह कहता हूं, कि हमलोग बृटिश-प्रजा हैं।

पहला कारण—जन्मसिद्ध अधिकार।

इस जन्मसिद्ध अधिकारको इंग्लैण्डने भारतका शासन-सूत्र हाथमें लेतेही समय स्वीकार किया था। उस समयके वृटिश राजनीतिज्ञोंने वृटिश-शासन प्रणाली और सङ्घटनके प्राथमिक नियमोंके आधारपर ही कार्य करना आरम्भ किया था और चाहे किसी देशके अधिवासीको, जो वृटिश-अधिकृत देशमें पैदा हुआ हो, उसे इंग्लैण्डमें जन्म-ग्रहण करनेवाले और रहनेवाले स्वतन्त्र वृटिश-नागरिक ही माना था।

वर्त्तमान प्रधान मन्त्रीके शब्दोंमें वह प्राथमिक नियम यह है :—

"स्वतन्त्रताही हमारे जीवनका श्वासोच्छ्वास है...हम सदा स्वातन्त्र्यके ही पक्षपाती रहते हैं—हमारी नीति, स्वतन्त्रताकी नीति है।"

मिस्टर मार्लेके शब्दोंमें भी सुन लीजिये,—"हाँ सज्जनों! यह पवित्र शब्द 'स्वतन्त्र' आजतक अँगरेज़ों द्वारा मनुष्यके हृदयमें उत्पन्न होनेवाली समस्त श्रेष्ठ भावनाओंके सिरमौरकी ओर इशारा करता है।"

इसीलिये जिस दिनसे हमारा इंग्लण्डसे नाता जुड़ा और

हम बृटिश-झण्डेके नीचे आये, उस दिनसे 'स्वतन्त्रता' प्राप्त करनेका हमें अधिकार सा हो गया।

जब पहले-पहल बम्बईका शासनाधिकार ईस्ट-इण्डिया-कम्पनीके हाथ आया, तभी उस समयकी सरकारने स्पष्टतया घोषणा कर दी थी, कि "यह स्पष्ट सूचित कर दिया जाता है, कि चूंकि इस टापूमें रहनेवाले सभी लोग महामाननीय महाराजकी प्रजा हैं, इसलिये वे और उनके बाल-बच्चे, जो इस टापूकी चौहद्दीके भीतर जन्म ग्रहण करेंगे, स्वतन्त्र नागरिक समझे जायेंगे और उन्हें ठीक वैसाही समझा जायेगा जैसा इंग्लैण्डमें पैदा होने और रहनेवाले लोगोंको समझा जाता है। *

इसी तरह ज्यों-ज्यों अँगरेज़ोंके हाथमें देशपर देश और प्रान्तपर प्रान्त आने लगे, त्यों-त्यों यही बातें दुहरायी जाने लगीं। इसी लिये मैं कहता हूं, कि जिस दिन इंग्लैण्डके साथ हमारा राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित हुआ, ठीक उसी दिनसे इंग्लैण्डमें जन्म लेने और निवास करनेवाले अँगरेज़-नागरिकों के सारे अधिकार अँगरेज़ोंने हमें दे दिये हैं और इसपर बार बार स्वीकृतिकी छाप लगायी है।

* Extract from the "Grant to the first East India Campany of the Island of Bombey, dated 24th March 1669."

इस तरह हमने आपको आजसे ढाईसौ वर्ष पहले—सत्रहवीं सदीमें—किये हुए अधिकार प्रदानका हाल सुनाकर, यह बतला दिया, कि हमलोग जिस दिनसे वृटिश-झण्डे के नीचे आये, उसी दिनसे स्वतन्त्र नागरिक माने गये हैं; अब मैं आपलोगोंको इस बीसवीं सदीके दो प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों की बातें भी सुना देना चाहता हूं। जिस समय बोअर-गण युद्धमें पराजित हो, अधीन बनाये गये और वृटिश-झंडे के नीचे चले आये, उसी समय अर्थात् १४ वीं जनवरी १६०१को इंगलैण्डके वर्त्तमान प्रधान मंत्री ने कहा था,—

"आज हमारा जिनलोगोंके साथ सम्बन्ध हो रहा है, उन्हें हम अपनी तरह स्वतन्त्र नागरिक बनायेंगे क्या, वे तो हैं ही।"

उसी अवसर पर विलियम हार्कोर्टने भी कहा था,—"यही रीति है, जिसके अनुसार आप अपने समानाधिकार भोगी नागरिकोंके साथ व्यवहार करने का प्रस्ताव करते हैं।"

इससे यह बात साफ़ मालूम हो जाती है, कि जिस दिन कोई जाति वृटिश-झंडे के नीचे चली आती है, उसी दिन—उसी क्षणसे वह स्वतन्त्र वृटिश-नागरिक के समस्त अधिकार प्राप्त कर लेती है। इसीलिये जिस दिनसे हम भारतीय वृटिश-झण्डे के नीचे आये हैं, उसी दिनसे हमारे वे जन्मसिद्ध अधि-

कार हुए, जो इंग्लैण्डमें पैदा होने और रहनेवाले नागरिकोंको प्राप्त हैं।

बोअर-युद्धमें इंग्लैण्डके दो करोड़ रुपये खर्च हुए, २०,००० मनुष्य मारे गये और इतनेही मनुष्य घायल भी हुए। इधर इंग्लैण्डको भारतकी अपार सम्पत्ति बिना मोल हाथ लग गयी; परन्तु दोनोंके साथ व्यवहारमें कैसा भेद-भाव दिखाई पड़ता है। पराजित होनेके कुछही वर्षोंके अन्दर बोअरोंने स्वायत्त-शासनके अधिकार प्राप्त कर लिये और आज प्रायः २०० वर्षों से भारत और इंग्लैण्डका राजनीतिक सम्बन्ध चला आता है, तोभी वह आजतक स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सका!

सत्रहवीं सदीमें अँगरेज़ राजनीतिज्ञोंके जो मनोभाव और नीति-सिद्धान्त थे, उनका हम जितना भी आदर करें, कम है। इन प्राचीन लोगोंके नामपर वर्त्तमान समयके उदारदलवालोंको और उनकी सरकार को अभिमान करना चाहिये। इस समय उन प्राचीन सिद्धान्तोंकी सुखकर और सौभाग्य-दायक पुनरावृत्ति हो रही है, अतएव हमें पूरी आशा है, कि वर्त्तमान सरकार उन प्राचीन नीतियोंका अनुसरण करेगी और भारतीय प्रजाको इंग्लैण्डकी प्रजाकी भांति स्वतन्त्र नागरिकताका जन्मसिद्ध अधिकार अर्पण करेगी। इंग्लैण्ड ऐसा करनेके लिये बाध्य है; क्योंकि हमारे इन अधिकारोंपर कोई आपत्ति

नहीं कर सकता। उसी अधिकारके बलपर एक भारतीय बृटिश-पार्लमेण्टका मेम्बर हो सकता है और वहांके राजकीय कार्योंके विषयमें मत भी दे सकता है। इंग्लैण्डका कोई मनुष्य कभी इसपर आपत्ति करनेका स्वप्न भी नहीं देख सकता। एकबार मेरे ही सम्बन्धमें—दला-दलीके कारण—मेरा नाम मतदाताओंके रजिस्टरमें लिखे जानेपर आपत्ति खड़ी की गयी थी, पर जिस बैरिस्टरने फिरसे उस रजिस्टर की जांच की, उसने उस व्यर्थकी आपत्तिको काट दिया और कहा, कि भारतीय होनेके कारण मैं भी बृटिश-प्रजा हूं, अतएव मेरा नाम दर्ज होनेमें कोई हर्ज नहीं है।

दूसरा कारण—प्रतिज्ञात अधिकार।

ऊपर मैंने ईस्ट-इण्डिया-कम्पनीके दानपत्रमें जिस अधिकारके दिये जानेकी बात आपलोगोंको बतलायी है, वह हमारे अधिकारोंकी घोषणा भी है और साथ-ही-साथ इन अधिकारोंकी स्वीकृति या प्रतिज्ञा पत्र भी है।

महारानी विक्टोरियाने लार्ड डर्बीको घोषणा तैयार करनेके लिये जो पत्र लिखा था, उसमें आपने लिखा था,—"और भारतीयोंको अच्छी तरह बतला दीजिये, कि बृटिश-राजमुकुटकी अधीनतामें आनेपर उनको किस प्रकार बृटिश-प्रजाके समान

माना जायेगा और उन्हींके से अधिकार प्रदान किये जायेंगे। साथही यह भी प्रकट कर दीजिये, कि सभ्यताके प्रचारके साथ-साथ उनके सुख-सौभाग्यकी कितनी वृद्धि हो जायेगी।"

इसके बादही घोषणा प्रचारित हुई और उसमें ईश्वरको साक्षी बना, उनके आशीर्वादकी प्रार्थना करते हुए, यह बात स्पष्ट शब्दोंमें सच्चे दिलसे कही गयी, कि—

"हमलोग अपने अधीन भारतके अधिवासियोंके साथ कर्त्तव्यके उन्हीं बन्धनोंमें बँधे रहेंगे, जो बन्धन हमारे और अन्य बृटिश-प्रजाके बीच हैं। ईश्वरकी दयासे हमलोग सच्चे हृदयसे, धर्मके साथ, इन कर्त्तव्योंका सदैव पालन करते रहेंगे।"

ईश्वर और मनुष्यको सामने रखकर इससे बढ़कर पवित्र और सच्ची प्रतिज्ञा और क्या की जा सकती है?

जिस दिन हिन्दुस्तानमें महारानी विक्टोरियाके सम्राज्ञी होनेके घोषणा की गयी थी, उस दिन महारानीने लार्ड लिटनके पास एक तार भेजा था, जिसमें उन्होंने लिखा था,—

"यह बात हिन्दुस्तानकी प्रजाको स्पष्ट बतला देनी होगी, कि चाहे कोई उच्च हो या नीच, हमारे शासनमें सबके साथ समान व्यवहार किया जायेगा, क्योंकि स्वतन्त्रता ही हमारी सबसे बड़ी नीति है, और समानाधिकार तथा न्याय सबके

साथ किया जाना ही हमारा ध्येय है। भारतीयोंके सुख-सौभाग्य की सदैव वृद्धि करनाही हमारे साम्राज्यके लक्ष्य और उद्देश्य बने रहेंगे।"

यह तार बड़े लाट-साहबने भरे दरबारमें पढ़ा था, जिसमें बड़े-बड़े राजा-रईस और प्रजाके प्रतिनिधि उपस्थित थे।

और यह स्पष्ट है, कि हमारे सुख-सौभाग्य की वृद्धि तभी सम्भव है, जब हमें स्वतन्त्रता, समानता और न्यायका उपभोग करनेका सचमुच अवसर मिले, अर्थात् जब हम भी वृटिश-प्रजाकी तरह अपना शासन आपही करने पायेंगे।

१८८७ की जुबिलीके अवसरपर यह प्रतिज्ञा एकबार फिर दुहरायी गयी और घोषणामें प्रतिज्ञात विषयोंपर फिर भी बल दिया गया। कहा गया, कि—

"जिस समय मैंने प्रत्यक्ष रूपसे भारतका शासन-सूत्र हाथमें लिया था, उस समय मैंने जो घोषणा प्रचारित की थी, उसे लोग भारतीय नरेशों और प्रजावृन्दोंकी स्वतन्त्रताका दानपत्र समझते हैं। मेरी यह सदैव हार्दिक इच्छा रही है और आगे भी रहेगी, कि उक्त घोषणामें की हुई प्रतिज्ञाओंका पालन करनेमें कभी आगा-पीछा या कोर-कसर न की जाये।"

अब इस समय हम जो माँग रहे हैं, वह इस स्वातन्त्र्य-पत्रमें दान किये हुए अधिकारोंसे अधिक या कमकी माँग नहीं

है। इसमें वृटिश नागरिकताका जो अधिकार प्रदान करनेकी प्रतिज्ञाएँ बार-बार की गयी थीं, उन्हींको हम काममें लाये जाते हुए देखना चाहते हैं।

फिर हमारे वर्त्तमान सम्राट्ने भी इस प्रकार प्रतिज्ञा की है:—"मैं महारानी के ही पद-चिन्होंका अनुसरण करूँगा और सभी श्रेणियोंके भारतवासियोंकी जिसमें हर प्रकारसे भलाई होती रहे, ऐसीही चेष्टा करता रहूंगा।"

फिर १६०६ की १६ वीं फरवरीको वक्तृता देते हुए सम्राट्ने कहा था,—"यह मेरी हार्दिक कामना है, कि इन उपनिवेशोंमें ही क्यों, हमारे अधिकृत समस्त देशोंमें स्वतन्त्र संस्थाओंका प्रचार किया जाये और वे सभी देश स्वयं सुखी होते हुए साम्राज्यके प्रति सच्चे राजभक्त बने रहें।"

और हमारे वर्त्तमान प्रधान मंत्री महोदयने तो सौ बातोंकी यही एक बात कहकर मानों सागरको गागरमें भर दिया है। आप कहते हैं;—"सुशासन कभी प्रजातन्त्र-शासनकी बराबरी नहीं कर सकता।"

फिर तो यह आर्थिक दरिद्रता उत्पन्न करनेवाली और न्यायानुमोदित कहलाकर भी अन्यायपूर्ण स्वेच्छाचार करनेवाली सरकार प्रजातन्त्र शासनकी कब बराबरी कर सकती है? साथही यह भी विचारनेकी बात है कि "स्वतन्त्र

संस्थाओंका दान करके अधीनोंके सुख-सौभाग्यकी वृद्धि और साम्राज्यके प्रति अधिकाधिक भक्तिका सञ्चार करनेकी कैसी प्रबल आवश्यकता है!

ऊपर हमने जिन पवित्र प्रतिज्ञाओंका उल्लेख किया है, उनके बलपर हमें अपने उन प्रतिज्ञात अधिकारोंको प्राप्त करनेका दावा करनेका पूरा-पूरा हक़ है और उन्हें पूरा करना हमारे प्रभुओंके लिये भी सम्मानकी ही बात होगी। इसीलिये मैं वृटिश-प्रजाके समस्त अधिकारोंको अपने जन्मसिद्ध अधिकार मानता हूं और चूंकि उनके दिये जानेकी हमारे साथ बार-बार प्रतिज्ञाएं की गयी हैं, इसी लिये हमारा उनपर पूरा-पूरा हक़ है। वृटेनके कर्त्तव्य, मनुष्यत्व, सम्मान, अन्तर्विवेक, स्वातन्त्र्य-प्रेम, प्रतिश्रुत प्रतिज्ञाएँ, धर्म-बोध, सहृदयता और सभ्यता आदि गुण और धर्म स्वयंही उसे हमें इन अधिकारोंको दे डालनेकी प्रेरणा कर रहे हैं।

तीसरा कारण—क्षति-पूर्त्ति ।

गत शताब्दियोंमें हमने जो दुख और अत्याचार सहन किये हैं, उनकी घटी पूरी करने के लिये हम दावेके साथ कह सकते हैं, कि वर्त्तमान शासन-प्रणाली बदल दी जाये और स्वाधीनता तथा स्वराज्यके पुराने और उदार भाव, जो

अँगरेज़ोंके अपने हैं, अमलमें लाये जायें। मैं पहले भी कह चुका हूं और फिरभी कहता हूं, कि यहाँ मैं उन पुराने दुखड़ों को सुनाना नहीं चाहता।

चौथा कारण--विवेक-बुद्धि।

प्रायः डेढ़ सौ वर्षोंसे हिन्दुस्तानके ऊपर जैसा शासन लाद दिया गया है, वैसे शासनकी अधीनतामें अँगरेज़ी प्रजा एक दिन भी रहना नहीं चाहेगी। सर हेनरी कैम्पबेल बैनर मैन, मि० ब्राइटका एक बड़ा ही सुन्दर वाक्य उद्धृत करते हुए कहते हैं,—

"मुझे अच्छी तरह याद है, कि एकबार मि० जान ब्राइटने हाउस-आफ़-कामन्समें बोलते हुए, राजनीतिक विषयोंके बारेमें एक कविकी दो सतरें पढ़ सुनायी थीं, जिसका सारांश यही था, पार्लमेण्ट और राजाकी अपेक्षा एक और भी दैवी शक्ति संसारमें विद्यमान है, यद्यपि वह हमारी दृष्टिसे परे है।"

इसपर सर हेनरी पूछते हैं,—वह "दैवीशक्ति कौनसी है?" इसका जवाब यह है, कि यह वह शक्ति है—प्रत्येक मनुष्यकी आत्मामें विराजमान रहनेवाली वह विवेक-बुद्धि है जो उसकी विचार-परम्परा और मानवीय सहानुभूतिको जागृत करती है।'

अब मैं उन्हीं लोगोंसे कह रहाहूँ, कि कृपाकर उस

विवेक-बुद्धिसे हमारे भी काम कीजिये। देखिये, मि० लार्ड मार्ले भी कहरहे हैं कि,—

"वह दिन निश्चय ही बुरा होगा, जिस दिन हम अपनी मातृभूमिके (इँग्लैण्डके) लिये एक विवेक और उस विस्तृत देशके लिये, जिसपर हमारी आँखें मुश्किलसे पड़ती हैं, दूसरा विवेक रखेंगे।"

अब सवाल यह पैदा होता है, कि वे:बृटिश प्रजाके अधिकार कौन कौनसे हैं, जिनका दावा करनेका हमें हक़ हासिल है ? यह अवसर ज़रा-ज़रासी बारीकियोंका विचार करनेका नहीं है, अतएव मैं स्थूल बातोंका ही दिग्दर्शन कराये देता हूँ।

(१) जैसे संयुक्त राज्यमें* राज्य शासनके प्रत्येक विभाग के सभी छोटे-बड़े ओहदोंपर वहींके लोग काम करते हैं, वैसेही हिन्दुस्तानमें भी राज्यके सभी मुहकमोंमें हिन्दुस्तानी ही होने चाहियें। हरएक विभाग, हरएक ओहदा, हर एक दर्जा, हिन्दुस्तानी सज्जनोंको ही मिलना चाहिये।

यह महज़ दावे या पढ़े-लिखे लोगोंकी हिमाक़तकी बात नहीं है—यद्यपि ये दोनों बातें भी ज़रूरी हैं—बल्कि यह एक अत्यन्त आवश्यक विषय है, जो कि उस न रुकनेवाली बुराईको

* इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड और वेल्सका सम्मिलित राज्य होनेके ही कारण विलायतकी सरकारको 'संयुक्त राज्य' कहा जाता है।

रोकनेके लिये एक दवा है, जिसका ज़िक्र आजसे एकसौ बीस वर्ष पहले सर जान शोरने किया था और जो कि हमारी वर्त्तमान दीनता और दरिद्रताका मूल कारण है। हिन्दुस्तानकी प्रजाकी भौतिक, नैतिक, मानसिक, राजनीतिक, समाजिक और औद्योगिक उन्नति तथा समस्त सम्भावनीय प्रगति एवं वृद्धिके लिये यह दवा ज़रूरही काममें लायी जानी चाहिये।

(२) जैसा संयुक्त-राज्य और अन्य उपनिवेशोंका रिवाज़ है, उसी तरह हिन्दुस्तानी प्रजाको भी यह अधिकार मिलना चाहिये, कि वही स्वयं टैक्स लगाये, क़ानून बनाये और टैक्ससे पाये हुए धनको जिस ढंगसे उचित समझे, व्यय करे।

(३) हिन्दुस्तान और इंगलिस्तानका आर्थिक सम्बन्ध न्याय और समानताके आधार पर अवलम्बित होना चाहिये—अर्थात् जो कुछ रुपया हिन्दुस्तानको किसी विभागमें ख़र्च करनेके लिये मिले, उसका पर्याप्त अंश हिन्दुस्तानियोंको वेतन, पेन्शन, इनाम और सरो-सामानके लिये मिलना चाहिये। हम कृपाकी भिक्षा नहीं करते—हम चाहते हैं केवल न्याय। अब मैं भारतीयोंके वृटिश-प्रजाके अधिकारोंकी सूक्ष्म बातोंको सम्पुट करके रख देता हूं और वह शब्द "स्वायत्त शासन" यानी "स्वराज्य" है। इस स्वराज्यका स्वरूप संयुक्त राज्य और उपनिवेशोंके शासनके तुल्य होना चाहिये।

मि० मार्ले बड़े ज़ोरोंके साथ यह सच्ची बात कहते हैं, कि हमारे राजनीतिक सिद्धान्तही हमारी जातीय महत्ता, शक्ति और आशाके आधार हैं।

इसी तरह भारतके लिये भी राष्ट्रीय गौरव, शक्ति और आशाके दिन तभी आ सकते हैं; जब इसमें भी स्वराज्यके उचित राजनीतिक सिद्धान्तोंका पालन होने लगे।

अब दूसरा महत्व-पूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होता है, कि क्या ये सब अधिकार अभी तुरंत दिये जाने सम्भव हैं? यदि नहीं, तो ये कब और कैसे मिलेंगे? मेरे विचारसे तो शायद कोई यह नहीं कह सकता, कि यह सारी यन्त्र-मण्डली एकही दममें बिखर जायेगी और हमने स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशोंके जिन अधिकारोंकी चर्चाकी है, वे हमें एकही दिनमें मिल जायेंगे।

अधिकार न० १—सरकारी नौकरियां पाना।

इस अधिकारका मतलब यह है, कि शासनके प्रायः प्रत्येक विभागमें भारतीयोंकी ही नियुक्ति हो जाये। इसपर प्रश्न उपस्थित होता है, कि क्या यह समय आ गया है, जब कि स्वराज्य के अधिकारकी सिद्धिका आरम्भ न्याय, धर्म, विश्वास और नियमके साथ होनाही चाहिए?

मेरा कहना है, कि हां। समय एक दम आ पहुंचा है,

बल्कि आरम्भ करनेका समय तो कभीका बीत चुका है। आजसे ७५ वर्ष पहलेही राजनीतिज्ञोंने इसे जारी करनेकी आवश्यकता अनुभव की थी और उन्होंने न केवल पवित्र घोषणा ही की, प्रत्युत् कुछ न कुछ आरम्भ कर देनेके विचारसे पार्लामेण्टसे कानून भी पास करवाया। यदि उस कानूनका पालन सरकार धर्म और न्यायके नामपर ठीक-ठीक करती आती, तो उस समय से लेकर आज तक हमारी अवस्था ऐसी उन्नत हो गयी होती, कि हमतो इस दुःखदायिनी दरिद्रतामें न होते और इंगलैण्ड हमारे असन्तोषका पात्र न बनता। उस समय हम इंगलैण्डकी समृद्धिपर सुखी होते और इंगलैण्ड हमारा सुख देखकर सुखी होता।

गत शताब्दीके अन्तिम ३० वर्षोंमें शरीर और आत्माकी पराधीनताका तिरस्कार और निवारण कर वृटेनने सभ्य-समाजमें सर्वोच्च गौरव प्राप्तकर लिया है। उसने एक तो गुलामीकी प्रथा उठादी है और दूसरे सबको वृटिश नागिरकोंके अधिकार भोगनेकी स्वतन्त्रता देकर उनकी आत्माको बन्धनसे मुक्त किया है। इंग्लैण्डके इतिहासके उस गौरवपूर्ण युगमें उस समयके राजनीतिज्ञोंने भारतका ध्यान नहीं भुलाया। उन्होंने स्पष्टतासे विशेषतया भारतके स्वराज्यके प्रश्न पर विचार किया था—केवल वृटिश-सम्बन्ध रहनेकी अवस्थामें ही नहीं—बल्कि वृटेनसे

एकदम प्रथक् हो जानेकी अवस्थामें भी भारत यदि स्वराज्य-भोगी हो, तो क्या होगा ? इस प्रश्न पर ख़ूब गहरे विचार किये गये थे। जब १८३३ का क़ानून पास हुआ था, तभी मेकालेने वह स्मरणीय वक्तृता दी थी, जिसमें उन्होंने वृटेनके भारतके प्रति क्या कर्त्तव्य हैं, इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला था। इस वक्तृता पर इंग्लैण्डवालोंको सदैव अभिमान करना चाहिये। मैं यहाँ उनकी पूरी वक्तृता तो नहीं सुना सकता, हां, ठीक थोड़ासा अंश उद्धृत कर सुना देना चाहता हूं। यों तो वह वक्तृता ऐसी है, कि उसका एक-एक शब्द आजकलके भी राजनीतिज्ञोंके अध्ययन और मनन करने योग्य है। सबसे पहले उन्होंने कहा था,—

"मैं यह कहनेको तैयार हूं, कि अपने जीवनके अन्तिम दिवसतक मुझे इस बातका अभिमान बना रहेगा, कि मैं भी उन लोगोंमें एक था, जिन्होंने वह बिल तैयार किया है, जिसमें वह प्रसिद्ध वाक्य-खण्ड वर्त्तमान है"........."यदि स्वार्थका ही विचार करें तो भी हमारे लिये यह कहीं अच्छा है, कि हमसे हिन्दुस्तानका कोई नाता न रहे और वहांवाले अपना शासन आपही सुन्दर रीतिसे कर सकें। भारत हमारे अधीन रहे और उसका शासन बुरी तरहसे हो, यह कभी वाञ्छनीय नहीं है।"........."हम सारी जातिकी जातिको अफ़ीम नहीं खिला

सकते--एक बड़ेसे राष्ट्रको, जिसे परमात्माने हमारे अधीन कर दिया है, मूर्ख और पङ्गु बनाकर नहीं रख सकते। यदि हम उन्हें पूरी तरह अपनी मुट्ठीमें कर रखनेके लिये उन्हें हर प्रकारसे निर्बल, निकम्मा और नामर्द बना रखना चाहें, तो यह हमारी बड़ी भारी नीचता होगी। ...."हमारे स्वतन्त्र या सभ्य होनेको धिक्कार है, यदि हम पृथ्वीकी किसी जातिको अपनी तरह सभ्य और स्वतन्त्र होते देख डाहसे मरने लगें। "........... "मुझे कोई भय नहीं है। हमारे आगे कर्त्तव्यका मार्ग खुला हुआ है, जो कि बुद्धिमत्ता, राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय सम्मानका भी मार्ग है। "..............."एक बड़ीसी जातिको गुलामी और अविश्वासके गहरे गड्ढेमें पड़ा हुआ देखकर यदि हम उनका इस ढंगसे शासन करें, कि वह नागरिकोंके समस्त अधिकारोंको प्राप्त करनेके लिये उत्सुक और योग्य बन जायें, तो यह हमारे लिये परम गौरवकी बात होगी।"

यही तो वह गौरवमय भावना थी, जिससे प्रेरित होकर मेकालेके कथनानुसार वह बुद्धिमत्तापूर्ण, उदारतापूर्ण और सदाशयतापूर्ण वाक्य-खण्ड लिखा गया था, जिसका भाव यह है—

"उक्त देशका कोई निवासी जो जन्मसे बृटिश-प्रजा है और

वहीं निवास करता है, वह किसी ख़ास धर्मका पालन करने, किसी खास स्थानमें या वंशमें जन्म लेने या काले-गोरे रंगके होनेके कारण कम्पनीकी अधीनतामें कोई पद, प्रतिष्ठा या नौकरी पानेसे वञ्चित न रक्खे जायें गे।"

मैं यहाँपर उन सब बातोंको दुहराना नहीं चाहता, जो मैंने आजसे पहले कई बार इस वाक्य-खण्डके विषयमें कही हैं। सिर्फ़ इतनाही कह देना काफ़ी समझता हूं, कि भारत और विलायतमें एकही साथ सिविल-सर्विसकी परीक्षाएं भी होने लगें, तो इस वाक्य-खण्डका उद्देश्य बहुत कुछ सिद्ध हो सकता है।

बस इसी एक कार्यसे उसका आरम्भ किया जा सकता है, जिस पर पूर्ण विचार करनेके अनन्तर आजसे ७३ वर्ष पहले ही पार्लमेण्टने क़ानून बनाया था। भारतके सेक्रेटरी-आफ़-स्टेटके हाथमें अधिकार है, कि वे चाहें जब उस क़ानूनके मुताबिक काम करना शुरू कर दें। उन्हें पार्लमेण्ट या और किसीसे पूछनेकी भी कोई जरूरत नहीं है।

इस उद्योगका आरम्भ करनेकी प्रार्थना करता हुआ मैं सेक्रेटरी-आफ़-स्टेट महोदयसे बड़े जोरोंसे इस बातकी सिफ़ारिश करताहूं, कि कुछ नौकरियोंको पानेके लिये पहले जो प्रतियोगिताका नियम जारी था, उसे उठा देना अच्छा नहीं हुआ।

इंग्लैण्डमें तो सब तरहकी नौकरियोंमें प्रतियोगिताके द्वारा ही प्रवेश हुआ करता है। यही नियम न्याय-युक्त और स्पष्ट है, अतएव इसेही यहाँ भी जारी करना चाहिये।

वर्त्तमान प्रणालीकी जो ख़ास बुराई है, उसे दूर करनेके लिये यह श्रीगणेश अवश्यही होना चाहिये।

मि० मार्लेने ठीकही कहा है, कि—

"किन्तु यदि आप बुरी तरहसे आर्थिक प्रश्नोंको छेड़ेंगे, तो सच जानिये, कि आप अपने जातीय अस्तित्वके जीवन और हृदयको ही ठेस पहुंचायेंगे।"

इसी प्रकार वर्त्तमान नीतिके कारण हमारी आर्थिक स्थिति जैसी बिगड़ रही है, उससे हमारे राष्ट्रके अस्तित्वके जीवन, हृदय और मर्म-स्थानको ही ठेस पहुंच रही है। इस तरह हमारे ऊपर तीन प्रकारका अत्याचार हो रहा है; अर्थात् हमारा धन तो छिनही रहा है, कार्य और बुद्धिका भी ह्रास हो रहा है। सारांश यह, कि हमारे लिए यह जीवनही बोझ हो रहा है। परन्तु ऊपर मैंने जिस नीतिके श्रीगणेश का अनुरोध किया है, वह हो जानेसे इस आर्थिक अप्रसन्नताकी जड़में कुठाराघात हो सकता है। और जब नौकरियां युरोपियनोंसे लेकर भारतीयोंको दी जाने लगेंगी, तब मानों सारी बुराई दूर हो जायेगी।

सुभीतेके खयालसे भी विदेशियोंको नौकर रखना कदापि पर्याप्त और सुविधाजनक नहीं हो सकता। सर विलियम हण्टर कहते हैं,—

"यदि हम हिन्दुस्तानी प्रजापर सस्ते में और सुभीतेके साथ शासन करना चाहते हैं, तो हमें वहाँके शासनका काम वहींके आदमियों से ही लेना चाहिये।"

डयूक-आफ़-डेवनशायरने, भारतके सेक्रेटरी की हैसियतसे कहा था (२३ वीं अगस्त १८८३) :—

"मेरे विचार में इस विषय में कोई सन्देह नहीं है, कि इस समय भारतका शासन ठीकसे नहीं होता।"

स्वभावतः ही, यह बात बिलकुल ठीक है।

कुछ वर्षोंतक समसामयिक परीक्षाओंका क्रम जारी रखनेके बाद, इन परीक्षाओंको केवल हिन्दुस्तान में ही जारी रखना पड़ेगा, जिसमें हमारा स्वराज्यका अधिकार सम्पूर्ण तया सिद्ध हो और शासनके कार्यमें किसी तरहकी गड़बड़ी न रह जाये।

इस महत्त्वपूर्ण समारम्भके साथ-ही-साथ इस उद्देश्यकी सिद्धिके निमित्त, प्रजामें शिक्षाका खूब प्रचार करना भी अत्यन्त आवश्यक है; बिना किसी तरहकी फ़ीसके प्राथमिक शिक्षा जारी होनी चाहिये और हर प्रकारकी ऊँची शिक्षा भी

जहाँतक सम्भव हो, मुफ्त ही दी जानी चाहिये। जहाँतक मेरा ख़याल है, भारतीय प्रजा बड़े सन्तोषके साथ शिक्षा-प्रचारके निमित्त होनेवाले ख़र्चका बोझ ख़ुशी-ख़ुशी अपने सिपर लेलेगी। प्रजाके धनपर ही मुझे और मेरे कई साथियों और सहयोगी कार्यकर्त्ताओंको मुफ्त शिक्षा मिली थी, जिसका उपयोग हमलोग भारत-निवासियोंकी भलाईके निमित्त सेवा करने में कर रहे हैं।

एक ओर शिक्षाका प्रचार हो और दूसरी ओर शासन-कार्यका प्रत्यक्ष अनुभव होने लगे, तो हमें इतनी शीघ्रताके साथ स्वराज्य मिल जाये, जितनी शीघ्रताकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

भारी ख़र्चका बहाना करना ठीक नहीं। सच पूछिये तो यदि इंग्लैण्ड और भारतके सम्बन्धमें अधिक न्याय किया जाये, तो हिन्दुस्तानकी थोड़ी मालगुज़ारी में से भी बहुत कुछ ख़र्च चलाया जा सकता है और ज्यों-ज्यों युरोपियनोंके स्थानमें भारतीयोंकी नियुक्ति होने लगेगी, त्यों-त्यों भारतको अपनी सारी आवश्यकताएं पूर्ण करनेके लिये अधिकाधिक द्रव्य मिलता जायेगा।

अधिकार न०२---प्रतिनिधित्व।

स्वयं इङ्गलैण्डमें भी सैकड़ों वर्षतक पार्लामेण्टके ढंगक सरकार जारी थी, यद्यपि उस समयतक धनिकों, मध्य श्रेणीके भी मनुष्यों और साधारण जनताको सरकारी मामलों अपनी आवाज़ ऊँची करनेका अधिकार नहीं था।

मेकालेने १८३१ में इस बातकी ओर सरकारका ध्या आकर्षित किया था, कि रिजेन्ट्सपार्क और उसके आसपास स्थानों में जो बड़े बड़े महल-मकान बने दिखाई देते हैं, उनक ओरसे पार्लामेन्टमें कोई प्रतिनिधि नहीं है। तब कहीं १८३ में मध्यम श्रणीके मनुष्योंको भोट देनेका अधिकार मिला औ प्रायः समस्त जनताको तो यह मताधिकार १८८५ से पह नहीं मिल सका था। स्त्रियोंको मत देनेका अधिकार न है। वयस्क मनुष्योंके मताधिकारका झगड़ा अभी तक चल रहा है।

अतएव यह कहना, कि अभी हिन्दुस्तानको प्रतिनिधित्व यह अधिकार नहीं दिया जा सकता, बिलकुल व्यर्थ है। ज़रू इस बातकी है, कि सरकार हमें यह अधिकार देनेकी इच्छ प्रकट करे। आजकल जिन राजनीतिज्ञोंके हाथमें हमारी सरका की बागडोर है, वे बड़े ही योग्य हैं और वे जब चाहें, त

ठिकानेके साथ अधिकार प्रदानका आरम्भ कर सकते हैं, जिसमें कुछ ही दिनोंमें हमारी अवस्था स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशोंकी तरह हो जाये। मैं यहाँ प्रतिनिधित्वताकी व्यापकता और सम्भवनीयताकी छोटी-मोटी बातें बतलाना नहीं चाहता। हिन्दुस्तानमें केवल उन्हीं सुशिक्षित विचारवानोंकी गिनती नहीं है, जो कि अंगरेजोंके स्कूलों और कालेजोंमें शिक्षा पा चुके हैं। उनके सिवा और भी बहुतसे लोग हैं, जो सम्प्रति देशी भाषामें छपनेवाले समाचार-पत्रों द्वारा सारे संसारकी ख़बर रखने लगे हैं और अपनी ही मातृभाषाके साहित्य द्वारा ज्ञानार्जन करते जाते हैं।

'रूसके किसानोंने तो अपनी योग्यता दिखलाकर संसारके सबसे बड़े स्वेच्छाचारी शासकसे डूमा लेही ली, जिसपर स्वतन्त्र वृटिश-साम्राज्यके प्रधान मंत्रीने, जो इस समय सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ हैं, सारे संसारको उच्चकण्ठसे घोषित कर कहा,—"पुरानी डूमा मर गयी, अब इस नयी 'डूमाको' ईश्वर चिरायु करे!" सच पूछिये, तो इन राजपुरुषोंके सह-नागरिक और इस वृहत् साम्राज्यके समस्त स्वतन्त्र नागरिक अपने जन्मसिद्ध और प्रतिज्ञात अधिकारोंके बलपर स्वराज्यके —अर्थात् वैध प्रतिनि-

* रूसकी पार्लामेण्टको 'डूमा' कहते हैं।

धित्वपूर्ण शासन-प्रणालीके लिये रूसके किसानोंकी अपेक्षा कहीं अधिक योग्य हैं। मैं निराश नहीं होता। मुझसे यह कहना व्यर्थ है, कि जबतक सब लोग तैयार नहीं हो जाते, तबतक चुप बैठे रहो। अंगरेज़ी प्रजा अपनी पार्लामेण्टके लिये बहुत दिनतक नहीं ठहरी रही। हम लोग तो १५० वर्षोंमें भी योग्य न बनाये जा सके। सच पूछिये, तो जबतक हमलोग यह काम करने न लग जायें और यह उत्तरदायित्व अपने सिर न लेलें, तबतक हम कभी योग्य नहीं हो सकते। पूर्व एसियामें चीन और पश्चिमी एसियामें फ़ारिस जग रहे हैं, जापान कभी-का जग चुका है और रूस अपने उद्धारके लिये प्रयत्न कर रहा है—साथ ही ये सब देश स्वेच्छाचारी शासनके नीचे हैं! यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है। ऐसी अवस्थामें [ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके स्वतन्त्र नागरिक ही क्यों यथेच्छाचारके शिकार हों इन्हीं लोगोंके पूर्वपुरुषोंनेतो सबसे पहले संसारको सभ्यता सिखलायी थी! आधुनिक जगत् मानवीय सृष्टिके इन आदि-गुरुओंका कम ऋणी नहीं है। क्या सभ्यताके आदि-प्रचारकोंके ये वंशधर, जगद्व्यापी परिवर्त्तन और समुत्थानके इस युगमें भी, स्वेच्छाचारी शासनके अधीन रखे जायंगे? यह तो एकदम जंगलीपन है और अंगरेज़ी स्वभाव, सिद्धान्त, और सभ्यता के प्रतिकूल है!

अधिकार न० ३ न्यायानुमोदित आर्थिक सम्बन्ध

इस अधिकारको देनेमें न तो विलम्बका कोई कारण है, न शिक्षा देनेकी आवश्यकता। यदि बृटिश-गवर्नमेण्ट उचित और न्याया-नुमोदित कार्य करना चाहती है, तो उसे स्वराज्य-सिद्धिकी ओर लेजानेवाले इस अधिकारको तो अभी दे डालना चाहिये।

पहले युरोपियन सेनाकेही खर्चकी बात ले लीजिये। भारत गवर्नमेण्टने अपने २५ वीं मार्च १८६० वाले खरीते में लिखा था,—

"हिन्दुस्तानकी सेना और सैन्य सामग्रीकी वृद्धि करनेमें करोड़ो रुपये खर्च किये गये हैं। साथही किलेबन्दियाँ वगैरह भी तैयार की गयी हैं, जिससे भारतकी पूर्णतया रक्षा हो, न केवल घरेलू या पड़ोसी दुश्मनोंसे, बल्कि सबसे। इससे पूर्वमें हमारी सत्ताका प्रभाव हो।"

फिर भी भारत गवर्नमेण्ट कहती है,—

"यह बात प्रायः सत्य है, कि इम्पीरियल गवर्नमेण्ट भारतमें इतनी बड़ी सेना रखती है और उसके लिये यहांकी आमदनीमेंसे इतना रुपया खर्च करती है, जितना हिन्दुस्तानकी रक्षाके लिये आवश्यक होता है। सच पूछिये, तो वह यहांकी बहुतसी सेना

को बड़ी सरकारके काममें आनेवाली रिज़र्व-सेना समझती हैं। इसीलिये जब कभी ज़रूरत पड़ी है, तभी इसने साम्राज्यके हितके लिये युरोपियन-सैनिकोंको भारतके बाहर भेजा है। इसके सिवा साम्राज्य-सरकारने देशी पलटनोंको भी अपने काममें लगाया है और उनसे भी उन युद्धोंमें काम लिया है, जिनसे भारत या भारत-सरकारका कोई सम्बन्ध नहीं था। इतने पर भी साम्राज्य-सरकार देशी सेनाके लिये कभी धेला भी ख़र्च नहीं करती।"

इसका मतलब यह है, कि गवर्नमेन्ट-आफ़-इण्डिया स्वयं स्वीकार करती है, कि उसने जो गोरी सेना यहां रखी है, वह साम्राज्यके हितके लिये हैं।

अब देखिये, इस बारेमें इण्डिया आफ़िसका क्या ख़याल है।

सर जेम्स पिले भारतके सेक्रेटरी-आफ़-स्टेटकी कौंसिलके एक मेम्बर थे और वेल्बी कमिशनमें सेक्रेटरीकी ओरसे प्रतिनिधि बनकर आये हुए थे। सर जेम्स पिलेने उस प्रस्ताव पर भाषण करते हुए, जिस प्रस्तावमें यह प्रकट किया गया था, कि जिस नीतिके अनुसार हिन्दुस्तानका सैनिक व्यय परिचालित होता है, वह नीति केवल मात्र भारतसे ही सम्बन्ध नहीं रखती, कहा था,—

"यह एक विचार करने योग्य विषय हैं, कि एक अधीन

देशको इस नीतिके कारण सेनाका सारा ख़र्च देना कहाँ तक उचित है, ख़ासकर ऐसी अवस्थामें, जबकि यह अधीन देशही साम्राज्यका एक ऐसा भाग है, जिसकी स्थल सीमा एक बड़ी युरोपियन शक्तिके अधिकृत देशके पास पड़ती है।"

उपरके उद्धरणोंसे स्पष्ट प्रकट हो जाता है, कि भारत-सरकार और इण्डिया-आफ़िसके ही कथन से यह साबित हो जाता है, कि गोरी पलटनके लिये जो इतना ख़र्च किया जाता है, उसका उद्देश्य केवल वृटिश-साम्राज्यका हितही है। इतने पर भी यह घोर अन्याय है, कि उसका सारा ख़र्च दरिद्र भारतीय प्रजासेही वसूल किया जाता है।

इसी प्रकार विलायतमें भी जो कुछ ख़र्च होता है, वहभी हिन्दुस्तानवालोंको ही देना पड़ता है, यद्यपि यह सारा ख़र्च साम्राज्यके हितके ही लिये किया जाता है। इधर अन्य उपनिवेश विलायती ख़र्चमेंसे धेला भी अपने पाससे नहीं देते। यह बात बड़ी बेइन्साफ़ीकी है। साधारण न्याय तो यही कहता है, कि यह ख़र्च हिन्दुस्तानके सिरपर न लादा जाये। यदि हम लोगोंके सिरसे यह सब व्यर्थके बोझ उतार दिये जायें, तो चाहे हमारे यहाँकी मालगुज़ारी कितनी भी कम हो, तोभी हम लोगोंको शिक्षा-प्रचार और अन्याय सुधार तथा उन्नतियाँ करनेके लिये काफ़ी धन मिल जाये। यह प्रश्न केवल

आर्थिक न्यायका है। मैंने यह स्पष्ट और उचित सिद्धान्तकी ही बात कही है और यदि इस सिद्धान्तके अनुसार कार्य किया जाये, तो भारतको अपनी सभी सैनिक, नौ-सैनिक और अन्याय आवश्यकताएं पूरी करने योग्य काफ़ी धन मिल जाया करे। साम्राज्यके लिये जो कुछ ख़र्च हम दें, उसके अनुसार हमें बड़ी-बड़ी तनख़्वाहोंवाली नौकरियां भी तो मिलनी चाहिये।

ये आर्थिक सम्बन्ध बहुत शीघ्रही स्थिर कर लिये जाने चाहियें। इसके लिये विशेष विलम्ब या प्रबन्ध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसे तो वृटिश-गवर्नमेन्ट अभी चाहे तभी कर दे। हाँ, उसके मनमें न्याय करनेकी इच्छा उत्पन्न होनी चाहिये। रही बात स्वराज्यकी —सो, यदि अंगरेज़ी प्रजा और विलायती राजनीतिज्ञ, भारतीय प्रजाके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करनेका निश्चय कर लें, तो वे इतने चतुर और राजनीति-विशारद हैं, कि हमें शीघ्र स्वराज्य देनेका कोई-न-कोई तरीका अवश्यही निकाल लेंगे। जो कोई दिलसे किसी बातका इरादा करता है, उसे उस कामको पूरा करनेका रास्ता भी मिलही जाता है।

अब मैं एक बड़ेही महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर आना चाहता हूँ और व्यक्तिशः मुझसे उसका बहुत प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

कुछ दिनोंसे लोग मुझसे बार-बार पूछने लगे हैं, कि क्या

मैं अपने पचासों वर्षों के व्यक्तिगत अनुभवके बाद भी अबतक बृटिश गवर्नमेन्ट और अंगरेज़ राजनीतिज्ञोंकी नेकनीयतीपर दिलसे विश्वास करता हूं और यह आशा रखता हूं, कि वे लोग हमें सदय होकर, स्वेच्छापूर्वक नेकनीयती और ईमानदारी के साथ, बृटिश-नागरिकोंकी तरह स्वराज्यके अधिकार प्रदान करेंगे, हमें अपना घर आप सम्हालने देंगे और पिछली सब बातें भूल जायेंगे ?

महिलाओं और सज्जनों ! मैं इस प्रश्नका आपलोगोंको पूरा और सच्चा उत्तर दूंगा।

सन् १८५३ में जब मैंने बम्बई-ऐसोसियेशनकी स्थापनाके अवसर पर पहले-पहल एक छोटीसी वक्तृता दी थी, उस समय मेरे निश्छल और निष्कपट हृदय पर अंगरेज़ी-शिक्षाका जो प्रभाव उत्पन्न हुआ था, उसकी बदौलत मैं अंगरेज़ोंके चरित्र, भाव और स्वातन्त्र्यप्रेमका जैसा अनुरागी हो गया था, तदनुसार मैंने अंगरेज़ शासकों पर विश्वास प्रकट करते हुए जो कुछ कहा था, उसका यह थोड़ासा उद्धृत अंश आपलोगोंको सुना देना चाहता हूं। वह अंश यह है :—

"जब हम यह देख रहे हैं, कि गवर्नमेण्ट हमारी भलाई करने के लिये हरदम मुस्तैद रहती है और जिस कामसें हमारा हित दिखाई देता है, उसमें हमारी सहायता करनेको सदैव अग्रसर

रहती है, तब अच्छाई इसीमें है, कि हम केवल कुढ़ना और उसकी निन्दा करना छोड़कर, उसे उचित रीतिसे अपनी यथार्थ अभाव-आवश्यकताओंका ज्ञान करायें।"

मैंने यह भी कहा था, कि—

"यदि इस तरहकी संस्थाएँ सदाके लिये प्रस्तुत रहें, कि जब कभी गवर्नमेण्ट कोई नया क़ानून जारी करे, तब उसकी भलाई बुराईका अच्छी तरह अनुसन्धान और विचार कर गवर्नमेण्टके पास मेमोरियल भेजा करें, तो हमारा विश्वासहै, कि हमारी दयालु सरकार अवश्यही हमारी प्रार्थनाओंको सुनेगी।"

उस समय मेरा यही विश्वास था। मेरा ही क्यों उस समयके सुशिक्षित मात्रका यही विश्वास था। इसी लिये तो सर चार्ल्स फ़े.अर साहबभी कह उठे थे, कि—"मैं यह देखकर बड़ाही चमत्कृत हुआ, कि अंगरेज़ी नीतिके सबसे बढ़कर समर्थक और सहायक, भारतके उच्च-अंगरेज़ी-शिक्षा-प्राप्त अधिवासी ही हैं। परन्तु बड़ी-बड़ी पवित्र प्रतिज्ञाएँ भी जब तोड़ दी गयीं, तब क्यों न सुशिक्षितोंके विचारमें यह परिवर्त्तन होता, जो हम आज देख रहे हैं!"

जबसे मैंने कार्य करना आरम्भ किया है, तबसे मुझे इतनी बार निराशा हुई है, कि कोई और होता, तो उसकी छाती फट

जाती और शायद वह बागी भी हो जाता तो कोई ताज्जुब नहीं।

मेरी निराशाएं साधारण नहीं थीं—बड़ी बुरी और बड़ी ही मर्म-स्पर्शिनी थीं। साधारणतया जो आदमी लड़ता है, वह यदि कभी हारता है, तो उसे निराशा होती ही है; परन्तु मैं तो कई बार लड़कर जीता, परन्तु नौकरशाहीने उन विजयोंके फल भी हमें नहीं चखने दिये। फिर भला मेरी निराशाका क्या ठिकाना है? क्यों न उससे दिल एकबारगी बैठ जाता? उदाहरणतः, सिविल-सर्विस और उसकी समसामयिक परीक्षाओं, लार्ड लारेन्सकी छात्रवृत्तियों और रायल-कमीशन आदिके मामले में मुझे पर्याप्त सफलता हुई, पर उसका नतीजा कुछ भी नहीं निकला। मैं इसके लिये कृतज्ञ हूं, कि—कुछ अन्यायसे वसूल किये हुए ख़र्चोंको विलायतके ख़ज़ानेसे लौटा देनेका प्रस्ताव पास हो गया है; परन्तु जैसी आशा की गयी थी, तदनुकूल भारतके सेक्रेटरी-आफ़-स्टेटका वेतन विलायतके ख़ज़ानेसे दिया जाना अभीतक स्वीकृत नहीं हुआ।

तोभी मैंने अबतक हिम्मत नहीं हारी और आप लोगोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा, कि आज भी आपके सामने आशा-पूर्ण हृदयके साथ खड़ा हूं। मैंने जो अबतक हिम्मत नहीं हारी, उसका कारण कुछ और है और मेरे आशा-पूर्ण होनेका कारण कुछ और।

दादाभाई

मेरे हिम्मत न हारनेका कारण यह है, कि मैंने जीवनभरमें अध्यवसायको ही अपना सखा बनाये रक्खा है। अध्यवसायके अर्थ हैं—हारते जाना और फिर जीतनेके लिये कोशिश करते जाना। चाहे कोई बड़ा काम हो या छोटा, तुम्हें अन्ततक अध्यवसायका अवलम्बन किये रहना चाहिये। उस कामकी लगन अन्ततक न छोड़ो—चाहे बीसियों बार निराशा हो, पाया हुआ भी हाथसे चला जाये, और फिर काम करना असम्भव ही क्यों न मालूम पड़ता हो। हम लोग ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जायें, त्यो-त्यों अपनी आवश्यकताके अनुसार ढंग बदल सकते हैं; पर अध्यवसायको अन्ततक नहीं छोड़ सकते। यदि हमारा उद्देश्य सच्चा और धर्मानुमोदित है—और यह ऐसा ही है, इसमें तो कोई शक ही नहीं है—तो अन्तमें हमारी विजय अवश्यम्भावी है। मेरे अब तक हिम्मत न हारनेका कारण यही विश्वास है।

अब इतनी निराशाओंके होते हुए भी मैं जो आशावान् बना हुआ हूं, उसका कारण भी सुनिये।

जिस प्रकार 'अध्यवसाय' शब्दकी यादने मुझे हिम्मत नहीं हारने दी, उसी प्रकार 'पुनरुदय' शब्दने मुझे आशावान् बना रखा है। मैं देखता हूं, वर्त्तमान अंगरेज, राजनीतिज्ञोंमें पुराने सचाईके भावों और स्वतन्त्रताकी भावनाओंके साथ स्वतंत्र

बृटिश-संस्थाओंका पुनरुदय हो रहा है। मैं आपको आज-कलके कुछ नामी-नामी राजनीतिज्ञोंकी उद्गार घोषणायें सुनाता हूं, जिन्हें देखकर आपही इस बातका फ़ैसला कर देंगे, कि मेरे विश्वास और आशाका आधार बलवान भित्ति पर है। हां, यह बात तो भविष्य घटनावली ही बतला सकेगी, कि ये घोषणायें कहांतक काममें लायी जायेंगी। यहां मैंने कुछ थोड़े-से ही वैसे हृदयोद्गार दिये हैं, जिनका उल्लेख मैंने अभी किया है—शेष उद्गार इस भाषणके अन्तमें परिशिष्टके रूपमें दे दिये गये हैं। हां, इतना मैं और कह देना चाहता हूं, कि ऐसे-ऐसे उद्गार और भी बहुतसे हैं, जो यहां समय और स्थानके संकोचसे नहीं दिये जा सके।

देखिये, सर हेनरी कैम्पबेल-बैनरमैन कहते हैं,—

"हमें स्वराज्यपर विश्वास है। हम इसे केवल कहने-सुनने को आवश्यक नहीं समझते और इसे ऐसा कोई मूर्ख सिद्धान्त भी नहीं मानते, जिसे दुर्भाग्यसे अंगरेजोंने स्वीकार कर लिया है। हम तो इसे एक आशीर्वाद समझते हैं और ज़ख्मको भरने, बेचैनीको दूर करने और कमज़ोरीको हटाकर मज़बूती लानेवाली एकही दवा समझते हैं। (१५-४-१९०१)"

"मैं अब भी पहले हीकी तरह, स्वराज्यकी गुणकारिता पर पूर्ण विश्वास रखता हूं (२१-१०-१९०२)" "पर यहां तो सवाल

दूसरा है—स्वराज्य और प्रजाका नियन्त्रण—और हमें इस सिद्धान्त पर विश्वास है।"

मिस्टर जान मार्ले।

"हां, सज्जनो! यह जो पवित्र शब्द 'स्वतन्त्र' है, उसे अंगरेज लोग सदासे सर्वोच्च भावनाओंको व्यक्त करनेवाला समझते रहे हैं। यह मनुष्यके हृदयमें नवीन जीवनी-शक्ति भरता रहता है। पामर्सन क्लब (६-६-१६००)"

"उसके विचारनुसार सुन्दर शासन न तो नौकरशाही कर सकती है, न अकड़शाही। जो सुशासन प्रवर्त्तित करना चाहते हों, उन्हें तो किसी देशकी प्रजाके मनमें स्वतन्त्र और अनियन्त्रित भावोंको उत्पन्न करना चाहिये, जो हृदयके नीचे खूब गहराईमें छिपे हुए रहते हैं।—आर्ब्राथ (२३-१०-१६०३)

आज कलके उदार दलवाले अंगरेज, राजनीतिज्ञोंमें स्वतंत्रता और उदारताकी भावनाओं, विचारों और इतिहासकी पुनरावृत्ति हो रही है, यही देखकर मेरे मनमें यह आशा जग रही है, कि हिन्दुस्तानमें शासनकी जो दोष-दुष्ट प्रणाली प्रचलित है, उसका अन्त समीप है और शीघ्रही यहां स्वतन्त्रताकी उदार और धर्मानुमोदित नीति प्रवर्त्तित होकर स्वराज्यकी प्रतिष्ठा होनेवाली है। जहांतक मैं समझता हूं, मेरी आशाएं और विश्वास निराधार नहीं हैं।

महिलाओं और सज्जनो ! हमारे पक्षमें केवल न्यायका निरतिशय शक्ति-सम्पन्न बलही नहीं है, बल्कि ब्रूटेनकी धार्मिकता और सम्मानके साथ-साथ हमारे जन्मसिद्ध और प्रतिज्ञात अधिकार भी हैं। इस बातकी नितान्त आवश्यकता है और मनुष्यता इस बातका दावा करती है, कि हमारे सब दुःख शीघ्र दूर कर दिये जायें और सर्वसाधारण भारतवासी दरिद्रता, दुष्काल, प्लेग, दीनता और दुर्गतिसे परित्राण पा जायें। जो जो सब नैतिक शक्तियां हमारे पक्ष में हैं, यदि उनका हम उपयोग करें, तो हमारी विजय होनी निश्चित है; क्योंकि इन सबका प्रभाव अंगरेजोंपर पड़े बिना नहीं रह सकता। आवश्यकता केवल इस बातकी है, कि हम इस विषयमें अंग्रजोंसे ही कुछ शिक्षा ग्रहण करें। जिस प्रकार वे लोग अविचल अध्यवसाय, परम शान्ति और उत्साहके साथ प्रार्थनाएं, प्रदर्शन और प्रकाश्य सभाएं करके किसी विषयमें लगातार आन्दोलन करते चले जाते हैं, वैसेही हमें भी करना चाहिये। हमें अपने इन परम सुदृढ़ अधिकारों और नैतिक शक्तियोंको योहीं न गंवा देना चाहिये। अस्तु, मैं फिर इसके विषयमें कुछ कहूंगा।

इसी तरह वर्त्तमान गवर्नमेण्टके कुछ नामी-नामी अधिकारियों के ऐसे आशापूर्ण और भविष्य-सूचक उदार विचार होनेके साथ ही-साथ पार्लामेण्टके बहुतसे मेम्बर तथा विलायतके बहुतसे

अल्वार और संस्थाएं हमारे पक्षमें आती जाती हैं। इण्डियन-पार्लामेण्टरी-कमिटीमें इस समय प्रायः दो सौ मेम्बर हैं। मजूर-दलके सभ्य, आइरिश नेशनलिष्ट मेम्बरगण और आमूल संस्कारवादीगण हमारे पक्षमें हैं और हमसे सहानुभूति रखते हैं। 'डेली न्यूज' 'ट्रिब्यून' 'मार्निङ्ग लीडर' 'मैंचेस्टर गार्जियन' 'दी स्टार' 'रेनाल्डस' 'न्यूएज' और अन्यान्य उदार-दलवालोंके पत्र भारतके अधिकारों और आवश्यकताओंके सम्बन्धमें बड़ाही उचित विचार प्रकट किया करते हैं। लेबर या डिमाक्रेटिक पार्टी, बृटिश नेशनलिष्ट पार्टी, रैडिकल और लिबरल आदि प्रायः भारतके सम्बन्धमें बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। बृटिश जनताका वह बहुत बड़ा भाग, जिसने धर्म और विवेकको धो नहीं बहाया है और दुनियाँके किसी सुखके लिये इन्हें बेच देनेको तैयार नहीं है, हिन्दुस्तानकी विशाल जनताके प्रति अपना कर्त्तव्य समझने लगा है। वह जान गया है, कि भारतमें कैसा घोर दुःख-दारिद्र छाया हुआ है और और इसका कैसा बुरा परिणाम हो रहा है। जब मैं पार्लामेण्टका मेम्बर था, तब वहां मैं अकेला ही था; पर आइरिश, रैडिकल और लेबर-मेम्बरोंकी मुझे सदा सहायता प्राप्त होती थी। इसी लिये मुझे अकेलापन

आइरिश—आयर्लैंण्डके मेम्बर।
रैडिकल—आमूल संस्कार वादी। लेबर—मजूरदल।

कभी न अखरा और कई प्रयत्नोंमें मुझे सफलता भी प्राप्त हुई। स्वराज्य प्राप्त करनेके पहले हमें पार्लामेण्टमें कितनेही भारतीय मेम्बर बनवाने होंगे। इस तरहकी अनुकूल परिस्थितिमें हमें अपना राजनीतिक उद्धार करही लेना चाहिये। सायही यह भी सत्य है, कि हमें अपनी शक्तिभर अपनी सामाजिक और औद्योगिक उन्नति भी कर लेनी होगी। किन्तु यदि हम अपना राजनीतिक उद्धार करनेका यह मौका चूक जायेंगे, तो अच्छा न होगा,

यद्यपि मैं यह बात स्वीकार करता हूं, कि हम लोगोंको इतनी बार निराशा हो चुकी है, कि हमारे दिल टूट गये हैं और विश्वास जाता रहा है। तो भी मुझे अंगरेजोंकि प्राचीन स्वातन्त्र्य-प्रेम और स्वराज्य भावनाके पुनरुदयको देखकर आशा बंध रही है और वृटेनकी की हुई प्रतिज्ञाओंकी लज्जा और वृटिश प्रजा के जन्म-स्वत्वको स्मरण कर यह आशा और भी दृढ़ हो जाती है। मैं आशा करता हूं कि अब जो मेरे जीवनके कई वर्ष बाकी हैं, उन्हींके भीतर मैं हिन्दुस्तानमें स्वराज्यकी उचित, साधुता मय, उदार और आदरणीय नीतिका प्रवर्त्तन होते देख सकूंगा।

मैंने आप लोगोंसे केवल अपनी आशाओं और उनके कारण नहीं बतलाये हैं; बल्कि उस नैतिक न्यायका-विश्व-ब्रह्माण्डकी उस सबसे बड़ी शक्तिका यह नियम झलकाया है, जिसके अनु-

सार हमारी ही भलाईमें इंगलैंएडकी बहुत बड़ी भलाई छिपी हुई है। ब्राइटने कैसी बुद्धिमानीकी बात कही है,—

"इंगलैंएडकी भलाई, भारतकी भलाईके द्वारा होनेको है—जिसमें इंगलैंएडकी धन सम्पति बढ़े इसके लिये भारतका धनवान् होना बहुतही आवश्यक है।"

मि० मार्लेका यह कहना भी कैसा उचित है, कि "नहीं महाशयों! व्यवस्थापकों द्वारा जो छोटेसे भी छोटा उचित कार्य किया जाता है, वह परिणाममें चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो; पर उससे असंख्य अच्छे कार्य हो जाते हैं। (९-१२) १८८९)

यदि स्वराज्य प्राप्त उपनिवेशोंकी तरह भारतको भी स्वराज्य देकर सुखी बना दिया जाये, तो बृटिश-साम्राज्यके नागरिकों के लिये कैसे गौरवका दृश्य दिखाई दे और न केवल इन्हींके लिए, वरन् सारी मनुष्य जातिके लिये, मङ्गलका मार्ग उन्मुक्त हो जाये। फिर तो यह नैतिक न्याय और सच्ची सभ्यताके महत्त्वका एक उदाहरण और प्रमाण हो उठे!

लेकिन जहाँ हम लोग भारतको स्वराज्य प्रदान करनेका कर्त्तव्य वर्त्तमान समयके अंगरेज़ राजनीतिज्ञोंको सुझा रहे हैं; वहाँ कुछ हमारा भी कर्त्तव्य है। हमें चाहिये, कि जहाँतक हमसे हो सके, इन राजनीतिज्ञोंका समर्थन करते रहें और भार-

तीय प्रजाको स्वराज्यकी कल्पनाका यथेष्ट ज्ञान कराते हुए उसका अभ्यास और उपभोग करने योग्य बनायें। साथही हमें अंगरेज़ी जनताको यह अच्छी तरह बतला देना चाहिये, कि हम जो तुम्हारी तरह पाना चाहते हैं, वह उचित है और वे सब अधिकार हमें अवश्यही मिल जाने चाहिये। आप लोगोंके विचारके लिये मैं इस कांग्रेसके सामने अपने कुछ विचार उपस्थित करता हूं।

मेरा पहला प्रस्ताव तो यह है, कि हमें अपने अधिकारोंकी मांगके लिये एक अधिकारी-याञ्चा-पत्र महामान्य सम्राट, हाउस-आफ-कामन्स और हाउस-आफ लार्डस के पास भेजना चाहिये। १६८६ के British Bill of Rights नामक कानूनकी ५ वीं धाराके अनुसार प्रजाको महाराजके पास आवेदन पत्र भेजनेका अधिकार प्राप्त है।

मैं दूसरा प्रस्ताव यह करता हूं कि धनी भारतवासियोंको एक बहुत बड़ा देश-हितैषी-फण्ड खोल देना चाहिये। इस धनसे कुछ चुने हुए योग्य व्यक्तियों और व्याख्यान-दाताओंको हिन्दुस्तानके कोने-कोनेमें भेजकर वहांके निवासियोंको वहींकी भाषामें बृटिश-प्रजाके अधिकारोंका ज्ञान कराना चाहिये और वे कैसे प्राप्त होंगे तथा उनका किस प्रकार उपयोग करना चाहिये। इसके सिवा ऐसे ही योग्य वक्ताओंका

एक दल विलायत भी भेज देना चाहिये, और उन्हें वहां सर्वत्र घूम-घूमकर बड़ी-बड़ी सभाएँ कर वृटिश-प्रजाको यह बतलानेका भार सौंपना चाहिये, कि हम भी वृटिश प्रजा हैं और हमें भी वृटिश-प्रजाके समस्त अधिकार मिलने चाहियें। इसके लिये उन्हें पूरा खर्च उसी फ़ण्डसे दिया जाना चाहिये। ऐसा करनेसे वृटिश-आत्मा निश्चयही जग पड़ेगी और वृटेनके लोग वहाँके राजनीतिज्ञोंको भारतको शीघ्र स्वराज्य देनेके लिये उत्तेजित करेंगे। हमें यहाँ-वहाँ, दोनो जगह घोर आन्दोलन करना चाहिये। जब विलायतमें Corn Laws (गल्लेके-क़ानून) बने थे, तब उसके विरुद्ध आन्दोलन करनेमें २० लाख रुपये ख़र्च किये गये थे। हमें चाहिये, कि इसीतरह हम लोग भी आन्दोलन करना सीखें।

मैं आरम्भमेंही कह चुका हूं, कि कांग्रेसके कर्त्तव्य दो प्रकारके हैं और इन दोनोंमें यही सबसे बड़ा महत्त्व-पूर्ण कर्त्तव्य है, कि वह वर्त्तमान शासन-प्रणालीको उलटवाकर स्वराज्यकी ओर अग्रसर होनेका प्रयत्न करती रहे।

दूसरा कर्त्तव्य वर्त्तमान शासनयन्त्रकी बुराइयों पर निगाह रखना है। चूंकि वर्त्तमान शासन-प्रणालीका सिद्धान्तही भ्रष्ट है, अतएव इसमें बड़ी बुराइयां हैं और नित्य नयी पैदा होती जाती हैं। इन सब पर कांग्रेसको ध्यान रखना होगा और

इन्हें दूर करनेके उपाय निश्चित करने होंगे, जिसमें अन्तको भारत स्वराज्य प्राप्त कर ले और उसके ये सारे दुःख दूर हो जायें। अपना यह कर्त्तव्य तो कांग्रेस गत २१ वर्षों तक ठिकानेके साथ करती रही है और आज भी विषय-निर्धारिणी समिति आप लोगोंके सामने कुछ ऐसे प्रस्ताव उपस्थित करनेवाली है, जिनका उद्देश्य वर्त्तमान शासन-प्रणालीका सुधार है, जो कि एक दम अस्वाभाविक और बेहद खर्चीली है। मैं आप लोगोंको और देरतक न ठहराता; पर मुझे कुछ बातें और कहनी हैं; जो वर्त्तमान स्थितिसे सम्बन्ध रखती हैं और कांग्रेसके कर्त्तव्य के दूसरे भागके अन्तर्गत आ जाती हैं। ये बातें प्रसङ्गतः बङ्गालके टुकड़े किये जाने और स्वदेशी-आन्दोलनसे भी सम्बन्ध रखती हैं।

बङ्गालके टुकड़े किये जानेसे बंगालियोंको जो दुःख हुआ है, वह स्वाभाविक है और उनकी नाराज़ी प्रकट करना उचित है। इंग्लैण्डने यह बड़ी भारी भूल की है; तो भी मैं निराश नहीं होता और आशा करता हूं, कि इस भूलकी मरम्मत कर दी जायेगी। इस प्रश्नको बंगालियोंने स्वयंही इतना महत्त्व दे रखा है, कि मेरा कुछ कहना व्यर्थ ही है; परन्तु इस सम्बन्धमें मैं आन्दोलन और आन्दोलन-कर्त्ताओंकी भी बड़ी चर्चा सुन रहा हूं, इसीसे कुछ कहे बिना नहीं रहा जाता। इंग्लैण्डका

सारा इतिहास—चाहे वह धार्मिक अंश हो या राजनीतिक, सामाजिक हो या औद्योगिक—आन्दोलनसे भरा हुआ है। आन्दोलन ही इंग्लैण्डके इतिहास की जान और रूह है। आन्दोलन ही द्वारा अंगरेज़ोंने अपने ऊंचेसे ऊंचे उद्देश्योंको सिद्ध कर लिया है और सुखी एवं स्वतन्त्र बनकर आज सारे संसारकी जातियोंमें प्रधान गिने जा रहे हैं।

इंग्लैण्डका दैनिक जीवन ही मानो आन्दोलन है। किसी-दिनका अखबार उठाकर देख लीजिये, आप उसमें आदिसे अन्त तक आन्दोलन ही आन्दोलनकी खबरें पढ़ेंगे। कहीं कांग्रेस है, तो कहीं कानफ़रेन्स है, कहीं सभा है, तो कहीं समिति —इसी प्रकार हज़ारों तरहके स्थानीय और राष्ट्रीय प्रश्नोंसे सम्बन्ध रखनेवाले आन्दोलन जहाँ-तहां होते दिखाई पड़ते हैं। प्रधान मन्त्रीसे लेकर छोटेसे छोटे राजनीतिक नेता तक अपने उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिये आन्दोलनका ही सहारा लेते हैं। सारी पार्लमिण्ट, तमाम प्लैटफार्म और सभी समाचार-पत्र आन्दोलनके ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। आन्दोलनही नैतिक शक्तिका सभ्यतानुमोदित शान्तिमय शस्त्र है और शारीरिक बल-प्रयोगकी अपेक्षा कहीं अच्छा है। विषय बड़ा ही प्रलोभन-जनक है। परन्तु मैं इसके सिवा और कुछ भी न कहूंगा, कि हिन्दुस्तानी अखबारवाले तो ऐंगलो-इण्डियन पत्र-सम्पादकोंके

सामने कोई चीज ही नहीं हैं। वृटिश-आन्दोलनकर्त्ताओंके विश्वविद्यालयमें जहां देशी सम्पादकोंने केवल मैट्रिक्युलेशन-परीक्षा पास की है, वहाँ ये ऐंग्लोइण्डियन तो एकदम एम० ए० पास हैं। हम लोग तो महज इनके चेले हैं। इस समय तो इन ऐंगलो-इण्डियनोंको खुश होना चाहिये, कि उनके चेले अपने गुरूओंका मान बढ़ा रहे हैं। शायद एक और अंगरेज राजनीतिज्ञके कुछ शब्द यहाँ उद्धृत करना और भी सन्तोष-जनक होगा और इससे इस विषयका रहा-सहा सन्देह भी दूर हो जायेगा।

मेकालेने अपनी एक वक्तृतामें कहा था,—"मेरी यह पक्की धारणा है, कि आन्दोलनही की बदौलत हमें वे सब लाभदायक सुधार प्राप्त हुए हैं, जो और किसी तरह प्राप्त नहीं हो सकते थे। सच बात तो यह है, कि सर्व-प्रिय गवर्नमेन्टसे आन्दोलन कभी न्यारा नहीं रह सकता। क्या बिना आन्दोलनके गुलामीकी प्रथा उठ सकती थी? आन्दोलन न होता, तो क्या गुलाम बेचने और खरीदनेका काम कभी बन्द होता!"

इंग्लैण्डमें हर कामके लिये—चाहे वह किसी स्थान विशेषसे सम्बन्ध रखता हो या सारे राष्ट्रसे—आन्दोलनका हथियार ही काममें लाया जाता है। आन्दोलन सभा, प्रदर्शन और पार्लामेन्टको आवेदन करके किया जाता है। इन आवे

इनोंमें केवल कृपा की भीखही नहीं मांगी जाती—अपने अधिकारोंपर भी जोर दिया जाता है। हां, जैसे पत्रोंमें 'आपका आज्ञाकारी सेवक' लिखनेकी एक चालसी चल पड़ी है, वैसे ही इनमें भी आवेदनपत्रों की सी मज़मून-बन्दी की जाती है। ऊंचे-ऊंचे अधिकारियोंके पास पहुंचनेकी एक यही तरकीब भी है। इन आवेदनोंमें अपने अधिकारोंका दावा किया जाता हैं, न्यायकी माँग की जाती है, अथवा सुधारके निमित्त प्रार्थना की जाती है। इसका उद्देश्य यह होता है, कि किसी ख़ास मामलेमें सर्वसाधारणके विचार क्या है, इसे पार्लामेन्ट को बतलाना और उसपर प्रभाव डालना। हम लोगोंको जो आजतक अधिकतर विफलताही प्राप्त हुई है, उसका कारण यह नहीं है, कि हमने बेहद अर्ज़ियाँ भेजी हैं; बल्कि यह है, कि हमने बहुत कम अर्ज़ी भेजी है। पार्लामेन्टमें इस बातका बड़ा प्रभाव पड़ता है, कि उसे इस बातका प्रमाण दिया जाये, कि किसी खास मामलेमें सर्वसाधारण्य जो कुछ चाहते हैं, वह दिलसे चाहते हैं। अभी उस दिन मिस्टर आस्क्वियथने स्त्रियोंके मताधिकारके विरुद्ध अनेक कारण दिखलाते हुए यह कारण भी उपस्थित किया था, कि मुझे इस बातका यथेष्ट प्रमाण अभीतक नहीं मिला, कि स्त्रियोंकाही बहुमत इस मताधिकारको प्राप्त करनेके पक्षमें है। हम लोगोंने अभीतक

अपनी माँगोंके बारेमें न तो पूरी तरहसे आवेदन किया है, न आन्दोलन। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण मामलेमें हमें पार्लामेन्टके पास सैकड़ों-हजारों आवेदनपत्र भेजने चाहिये और उनपर भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे लाखों मनुष्योंके हस्ताक्षर कराने चाहिये। अभी इंग्लैण्डकी हालकी बात ले लीजिये। गत अकटूबर महीनेतक यहाँकी चर्च-पार्टीने १४०० सभाएं प्रत्यक्ष रूपसे शिक्षा-बिलके विरोधमें की थीं। इसके अलावा कितनीही सभाएं तो चुपचाप हुई। इन लोगोंने कोई तीन चार लाख मनुष्योंके हस्ताक्षर लेकर आवेदन भेजा है और कितनी ही तरहसे प्रदर्शन कर, अपना असन्तोष प्रकट किया है। शायद तबसे उन लोगोंने अपना उद्योग और भी तीव्र कर दिया है। इस लिये यदि हम सचमुच अंगरेज प्रभुओंसे न्याय कराना चाहते हैं, तो हमें भारतके कोने-कोनेमें आन्दोलन खड़ा कर देना चाहिये—हां, हमारा यह आन्दोलन शान्तिमय जरूर हो। अंगरेजोंको इस बातका विश्वास करा देना होगा, कि हम इसके लिये जी-जानसे तुले बैठे हैं। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है, कि बंगालियोंने इस बातको समझ लिया है और इसी पथपर अग्रसर हो रहे हैं। समस्त भारतको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और धनके त्याग तथा पूरी लगनके साथ कार्यमें लग जानेका महत्त्व समझ लेना चाहिये।

आन्दोलन करो—आन्दोलन करके ही तुम अपनी आवाज़ वहरे कानोंमें डाल सकोगे। भारतीय प्रजाको समझा दो, कि उसके अधिकार क्या हैं और उसे उन अधिकारोंको क्यों और कैसे प्राप्त करना चाहिये—साथही वृटिश-प्रजाको भी यह वतला दो, कि भारतीयोंके स्वत्व क्या हैं और उसे उनको वे उच्चाधिकार क्यों सौंप देने चाहिये। हम न वोलेंगे, तव तो वे यही कहेंगे, कि हम उनसे पूरे सन्तुष्ट हैं और जब वोलेंगे, तव आन्दोलन-कर्त्ता वनाये जायेंगे, यह तो अच्छा तमाशा है! हमसे तो कहा जाता है, कि देखो, गैरक़ानूनी कारखाई न किया करो और गवर्नमेण्ट स्वयं गैर-कानूनी और मनमानी कारखाई करती चली जाती है।

रही वात 'स्थिर वस्तुकी'। * प्रत्येक विल जो पार्लामेण्टमें जाकर रद्द हो गया, पहले स्थिर वस्तु ही माना और कहा जाता था। क्या यह असत्य है? दूसरे साल वह फिर पेश किया जाता है। १६०२ का एडुकेशन-ऐक्ट भी तो स्थिर वस्तुही था? वह तो पार्लामेण्टसे कानूनके रूपमें पास हो चुका था, पर आज वह किस गड़वड़झालेमें पड़ा हुआ है। इसके विरुद्ध

* भारतके उस समयके सेक्रेटरी-आफ़ स्टेट लार्ड मार्लेने कहा था, कि वङ्ग-भङ्ग अब रद्द नहीं हो सकता—वह स्थिर वस्तु हो गया। इसी पर यह उद्गार है।

कितनी उत्तेजना फैली, कितना आन्दोलन बढ़ा और आगे भी न जाने कितनी हलचल मचने वाली है। इसको लेकर पार्लामेण्टके दोनों भवनोंमें भी ले-दे मच जा सकती है। इस लिये कोई वस्तु सदाके लिये 'स्थिर' नहीं कही जा सकती। समय सदा बदलता रहता है और परिस्थितियां भी बदला करती हैं। आजकी भूल कल दुरुस्त कर दी जा सकती है, गलती समझमें आ सकती है, नयी शक्तियाँ काम करने लग जा सकती हैं और आजकी स्थिर वस्तु कल एकदम अदृश्य हो सकती है।

मैं जो संगठन करना चाहता हूं और जिसे मैं राजनीतिक प्रचारकोंका दल भी कह सकता हूं, उससे एकही समय अनेक कार्य सिद्ध हो सकते हैं। यह दल प्रान्त प्रान्तमें घूमकर सारी प्रजाको उसके स्वत्व बतलायेगा और सबको इन अधिकारोंकी मांगके लिये तैयार कर देगा, ताकि जिस समय वे अधिकार-प्राप्त हों, उस समय लोग इन्हें अच्छी तरह उपयोगमें ला सकें।

'स्वदेशी' कोई आजकी बात नहीं है। जहांतक मैं जानता-हूं, यह गत वर्षोंतक बम्बईमें अमलमें लायी गयी थी। मैं एक स्वतन्त्र व्यापारी हूं, मेम्बर हूं और गत बीस वर्षोंसे काबडेन क्लबकी प्रबन्धकारिणी कमिटीमें हूं, तोभी मुझे यह कहना पड़ता है, कि इस अस्वाभाविक अर्थ-शोषणके कारण 'स्वदेशी'

का अवलम्बन करना हमारे लिये आवश्यक ही नहीं, बल्कि बाध्य हो गया है। जबतक इसी तरहका अस्वाभाविक अर्थ-शोषण जारी रहे और हम ग़रीब होते चले जायें, यहांकी ग़रीब जनताको नंगा और भूखा बनाकर बाहरवालोंकी तनख़्वाह और पेन्शनके लिये प्रतिवर्ष प्रायः २० करोड़ रुपये खींच लिये जाते रहेंगे, तबतक हिन्दुस्तानकी दशाके अनुसार इस पर आर्थिक क़ानूनोंका प्रयोग करना, मरेको मारना है। इस मामलेमें मैं न जाने कितनी बार कितनी ही बातें कह चुका हूं, अतएव यहाँ फिर उन बातोंको दुहराना नहीं चाहता—केवल आप लोगोंसे इस बातका अनुरोध करता-हूं, कि मेरी पुस्तक * पढ़ जायें। मैं अंगरेज़ोंसे ही पूछता हूं, कि डेढ़सौ वर्षोंकीबात तो दूर-किनार, क्या आप लोग अपने देशमें इस तरहका अस्वाभाविक शासन एक दिनके लिये भी टिकने देंगे? नहीं—कदापि नहीं। इंग्लैण्ड कभी ऐसे स्वेच्छाचारके आगे सिर नहीं झुका सकता। यह तो मि० मार्लेके शब्दोंमें आर्थिक प्रश्नोंके साथ बुरी तरह छेड़-छाड़ करना—राष्ट्रीय जीवनके अस्तित्वकी ही जड़ खोदना है।

अब मैं यहां हिन्दुस्तानियोंका एक और कर्त्तव्य बतलाता-

* यह पुस्तक वही है, जिसका जीवनी में जिक्र किया गया है। इसका नाम Poverty and Un-British Rule in India है।

हूं। यद्यपि मैं ने इसका उल्लेख सबसे पीछे किया है, तथापि महत्त्वमें यह किसी से कम नहीं है। मेरा मतलब सभी धर्मों और सभी श्रेणियोंके मनुष्योंमें राजनीतिक एकता सम्पादन करनेसे है। इसके लिये मैं आप लोगोंसे हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूं—भीख मांगता हूं; क्योंकि किसी अच्छे कार्यके लिये भिक्षुक बनते हुए भी मुझे शर्म नहीं आती। आवश्यक होने पर मैं किसी अच्छे उद्देश्यके निमित्त सचमुच भिक्षुक-वृत्ति अवलम्बन कर सकता हूं। जैसे उन बातोंके लिये, जो अंगरेजोंके ही हाथोंमें हैं, मैं अंगरेजोंसे प्रार्थना करता हूं, वैसे ही इस बातके लिये मैं केवल आप लोगोंसे ही प्रार्थना करता हूं, क्योंकि यह बात केवल हमारे आपके वश-की है। इस राजनीतिक ऐक्यके लिये प्रार्थना करते समय मैं यों तो हर जाति और धर्मके लोगोंसे प्रार्थना करता हूं, पर *मुसलमान भाइयोंसे मेरी ख़ास बिनती है। उनमें बड़ा पौरुष* है। वे भारत और उसके बाहर कई मुल्कोंके शासक रह चुके हैं—आज भी उनके हाथमें बहुतसी रियासतें हैं। निज़ाम-हैदराबादकी रियासत तो तमाम देशी रियासतोंसे बड़ी है। इसके अतिरिक्त जूनागढ़, राधनपुर, भूपाल और अन्य रियासतें हैं। उनमें शिक्षाका प्रचार कम होनेपर भी उन्हें इस बातका अभिमान होना चाहिये, कि सारे

भारतवर्षमें मि० बदरुद्दीन तैयवजी ही पहले बैरिस्टर हुए और उनके भाई मि० कमरुद्दीन तैयवजी पहले सालिसिटर। * बम्बईके व्यापारका बहुत बड़ा भाग मुसलमानोंके ही हाथमें है, यह बात तो हर किसीको मालूम है। इस समय मुसलमानोंका प्रधान कर्त्तव्य है, कि वे शिक्षा-प्रचारका प्रयत्न करें। इस सम्बन्धमें सर सैयद अहमद और जस्टिस तैयवजी उनके बड़े हितैषी सिद्ध हुए हैं और शिक्षाप्रचारका विशेष उद्योग कर रहे हैं। एकबार वे शिक्षाके मामलेमें हिन्दुओंके समकक्ष हो जायेंगे, तो फिर डरनेकी कोई बात न रह जायेगी। उनमें इस बातकी योग्यता, शक्ति और बुद्धि है, कि अपने पैरोंके बल खड़े

---

* मि० नौरोजीका यह कहना ठीक नहीं। शायद उन्हें पक्की खबर न लगी होगी। इसमें तो कोई शक नहीं, कि तैयब बन्धुओंकेसे सुयोग्य व्यक्ति किसी जातिके बड़े गौरवके धन हो सकते हैं; पर उक्त दोनों पेशोंको अख्तियार करनेवाले वे ही प्रथम व्यक्ति नहीं थे। मि० बदरुद्दीन तैयबजीने ३० वीं अप्रेल १८६७को बैरिस्टरी करनी शुरू की थी; पर इसके पहलेसे ही दो भारतीय बैरिस्टरी करने लगे थे। मि० एम० घोषने १८६६ को ६वीं जूनसे बैरिस्टरी करनी प्रारम्भ की थी। इनसे भी पहले मि० जी० एम० ठाकुरने बैरिस्टरी करनी शुरू की थी। इनके बैरिस्टरी शुरू करनेकी तारीख ११वीं जून १८६२ है। इन्हींको लोग प्रथम भारतीय बैरिस्टर कहते हैं। इनसे भी पहले बाबू बेणीमाधव बनर्जीने कलकत्ता हाइकोर्टमें अटर्नीका काम करना शुरू कर दिया था। मि० कमरुद्दीन तैयबजी तो इनके एक भाईके समसामयिक थे।

हो सकें और जीवनके प्रत्येक विभागमें अपनी धाक जमा दें— सरकारी नौकरियाँ पाना तो कोई बड़ी बातही नहीं है। सरकारी नौकरियाँ ही हमारा सर्वस्व नहीं हैं।

मैं बड़े ज़ोरोंसे गवर्नमेन्टसे इस बातकी अपील करता हूं, कि वह मुसलमानोंमें शिक्षाका प्रचार करनेके लिये जो कुछ कर सकती हो, वह करे। एकबार जहाँ स्वराज्य स्थापित हो गया, कि सबके दुःख दूर हो जायेंगे। उसके पहले तो हमारे दुःख दूर होने मुश्किल हैं। इस लिये सारे राष्ट्रके भीतर पूर्ण राजनीतिक एकता हो जानी आवश्यक है—तभी हमारा उद्धार होगा।

राजनीतिक स्थितिके अनुसार हम सबकी अवस्था समान है—हम सभी एकही नावपर सवार हैं—अगर पार उतरेंगे, तो एकही साथ, और डूबेंगे भी तो एकही साथ। इस एकताके बिना हमारे सारे प्रयत्न व्यर्थ होंगे। एक कहावत है और वह बड़ी बुद्धिमानीसे भरी हुई है, कि 'एक होकर रहोगे, तो खड़े रहोगे और फूट फैलाओगे, तो मुंहके बल गिर पड़ोगे।'

यहाँपर मैं एक और बातका उल्लेख करना चाहता हूं। अगर मैं भूलता नहीं हूं, तो मेरा यह ख़याल है, कि बंगालके अधिकांश मुसलमान कई पीढ़ियाँ पहले हिन्दूही थे; अतएव हिन्दुओंके साथ उनके रक्तका सम्बन्ध बना हुआ है। आजकल भी बंगाली हिंदुओं

और मुसलमानोंको पहचाननेमें बड़ी कठिनाई होती है। बहुतेरे स्थानोंमें ऐसा देखा जाता है कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेके सामाजिक दुःख-सुखमें हाथ बटाते हैं। उनका जो परस्पर रक्त-सम्बन्ध है, वह कभी कभी जोर मारे बिना नहीं रहता। बम्बईकी तरफभी गुजराती हिन्दुओं और मुसलमानोंकी भाषा एक है—सब गुजराती ही बोलते हैं। इनकी उत्पत्ति एकही जातिके मनुष्योंसे है। यही बात महाराष्ट्र-प्रदेशके हिन्दू-मुसलमानोंके बारेमें भी कही जा सकती है। सभी मराठी बोलते हैं और सभी एक ही जातिके मनुष्योंसे उत्पन्न हुए हैं। जहाँतक मेरा ख़्याल है, यही अवस्था समस्त भारतकी है। हाँ, उत्तरीय भारतमें प्राचीन मुसलमान आगन्तुकोंके वंशधर भी मौजूद हैं ; परन्तु वे भी तो अब भारतकी ही प्रजा हैं।

सर सैयद् अहमद बड़े कट्टर राष्ट्रीय नेता थे। अकस्मात् एक बार इँग्लैण्डमें उनसे मेरी मुलाकात सर सी० विङ्गफिल्डके घर पर हो गयी। वे और उनके मित्र वहाँ पहले से ही बैठे हुए थे। इतनेमें मैं भी जा पहुंचा। उनके एक मित्र मुझे पहचानते थे। उन्होंने ही मेरा उनसे परिचय कराया। जब उन्होंने मेरा नाम सुना, तब झट मेरे गले आ लगे और मुझसे मिलने के कारण हार्दिक आनन्द प्रकट करने लगे। मैंने उन्हें हर पहलूसे देखा-भाला तो यह मालूम हुआ, कि वे समस्त

भारत को एक राष्ट्र बनाकर उसका हित करना चाहते हैं। वे बड़े ही विशाल-हृदय और उदार देश-प्रेमिक थे। कुछ दिन हुए जब मैंने उनकी जीवनी उठाकर पढ़ी थी, तब मेरा हृदय उनके प्रति श्रद्धा और सम्मानसे भर उठा था। इस समय लाख खोजनेपर भी मुझे उनकी जीवनी की यह प्रति न मिल सकी, इसी लिये मैं गत १२ वीं अकटूबरके 'इण्डिया' नामक समाचार-पत्रसे उनके कुछ उद्गारोंको उद्धृत किये देता हूं, जो सर हेनरी काटनने प्रसङ्गतः उक्त पत्रमें उद्धृत किये हैं —

"उनका (सर सैयद अहमदका) कहना था, कि हिन्दू और मुसल्मान, ये दोनों जातिँ भारतकी दो आंखें हैं। एकको पीड़ा पहुंचाना, दूसरी को भी पीड़ित करना है। हमें चाहिये, कि एक दिल होकर काम करें। किसी काममें एक हृदय, एक आत्मा और एक तरहकी भावना लेकर पिल जायें। अगर हम मिले रहेंगे, एक दूसरेको मदद देते रहेंगे, तो बचाते और सम्हालते रहेंगे; पर यदि हममें फूट रही और एक दूसरेकी बुराई करते रहे, तो हम दोनों ही मर मिटेंगे।"

वे जहां कहीं योग्यता या गुण देखते थे, उसका सम्मान किये बिना नहीं रहते थे। एकबार उन्होंने कहा था,—

"मैं आपलोगोंको इस बातका विश्वास दिलाता हूं कि हमारे इस देशमें केवल बङ्गालीही एक ऐसी जाति हैं, जिनपर

हमें अभिमान करना चाहिये। उन्हींकी बदौलत हमारे देशमें ज्ञान, स्वाधीन चिन्ता और देश-भक्तिका प्रचार हो रहा है। मैं यह सच कहता हूं, कि वे हिन्दुस्तानकी सब जातियोंके सिर-मौर और मेत्रा-स्वरूप हैं। 'राष्ट्र' शक्तिके अन्तर्गत हिन्दू और मुसलमान दोनोंही आ जाते हैं—क्योंकि मैं इसके सिवा दूसरा अर्थ इस शब्दका जानताही नहीं।" उन महान् पुरुषकी यही बुद्धिमत्तापूर्ण और देश-भक्ति-दर्शक सम्मति हमारे सब मुसलमान भाइयोंको अपने दिलोंमें भर लेनी चाहिये। मैं पुनः कहे देता हूं, कि हमारा उद्धार भारतकी समस्त जातियोंके पारस्परिक प्रेम और सहयोग से ही होना सम्भव है।

मैंने अफसर लोगोंको यह विचार प्रकट करते सुना है, कि कांग्रेसके लिये उचित सङ्गठनकी बहुत आवश्यकता है। मैं समझता हूं, कि जो लोग ऐसा प्रश्न उठाते हैं, वे हाउस-आफ-कामन्सकी तरह एक बिल तैयार कर पेश करेंगे। तब कांग्रेस उसपर विचार करेगी और बहुमतके अनुसार उसका फैसला किया जायेगा।

हममें से प्रत्येकका यह धर्म है, कि जिससे जहांतक बन पड़े, वह, वहींतक सबसे मेल रखता हुआ, स्वराज्यकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करे।

अन्तमें सामाजिक सुधार और औद्योगिक अभ्युदयका प्रश्न

भी आ ही जाता है। इन दोनोंहीके निमित्त सच्चे दिलसे काम करनेवालोंकी ज़रूरत है। प्रत्येकके लिये पृथक् और हार्दिक उद्योग आवश्यक है। राजनीतिक, सामाजिक और औद्योगिक प्रगतिके निमित्त हमें संगही संग कार्य करनेकी आवश्यकता है। एकमें जो प्रगति होगी, वह दूसरोंको भी लाभ पहुंचायेगी। मि० मार्लेने ठीक ही कहा ह और बड़ी दूरदर्शिताकी बात कही है, कि—"हमारे राजनीतिक सिद्धान्त ही हमारी राष्ट्रीय महत्ता, शक्ति और आशाके आधार हैं।" उनकी दूसरी बात भी जो मैं आपलोगोंको सुनाना चाहता हूं, वैसीही मूल्यवान् है। वे कहते हैं,—"आर्थिक प्रश्नोंको बुरी तरह गड़बड़झालेमें डाल देना राष्ट्रीय अस्तित्वके जीवन, हृदय और मर्मको विद्ध करना है।" ये दोनों बातें राष्ट्रीय समस्याको मानों स्पष्ट बतला देती हैं।

हमारी आर्थिक दुर्दशाही हमारे सब दुःखोंका कारण है और इसकी एकमात्र औषध वेही राजनीतिक सिद्धान्त हैं, जो हमारी राष्ट्रीय महत्ता, शक्ति और आशाके आधार हो सकें। इन राजनीतिक सिद्धान्तोंको एकही शब्द 'स्वराज्य' व्यक्त कर देता है। स्वराज्यही एकमात्र औषध है। स्वराज्यपर ही हमारी सारी आशा, शक्ति और महत्ता अवलम्बित है।

अन्तमें मैं आप सब लोगोंको दक्षिण-अफ्रिकामें भारतीयोंके

साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहारोंपर ध्यान देनेकी प्रार्थना करता हूं।

अच्छा, सज्जनो और महिलाओं! अब मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं। मैं नहीं जानता, कि मेरे जीवनके जो थोड़े दिन शेष रह गये हैं, वे मुझे कौनसा सौभाग्य दिखलायेंगे, तो भी मैं अपने देश और देशभाइयोंके लिये प्रेम और भक्तिसे भरा हुआ यह सन्देशा छोड़ जाना चाहता हूं, कि—

सब मिलकर एक हो जाओ और लगातार अध्यवसाय-पूर्वक उद्योग करते हुए स्वराज्य प्राप्त कर लो, जिसमें दरिद्रता, दुष्काल और प्लेगकी मारसे लाखों मनुष्य जो बेमौत मर रहे हैं और करोड़ोंको भरपेट भोजन भी नसीब नहीं होता, वह दुर्दशा दूर हो जाये और भारतवर्ष संसारकी बड़ी और सुसभ्य जातियोंमें फिर वही आदर-पूर्ण स्थान प्राप्त कर ले, जो उसे किसी ज़मानेमें प्राप्त था।

भाषणका परिशिष्ट।
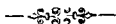
यहाँपर मैं कुछ प्रसिद्ध पुरुषोंके उद्गार, उदारताके कर्त्तव्यों और सुख-सौभाग्य एवं प्रगतिके निमित्त, स्वराज्यकी नितान्त आवश्यकताके सम्बन्धमें, प्रकाशित कर देना चाहता हूँ।

राइट आनरेव्ल सर हेनरी कैम्पवेल वैनरमैनके उद्गार।

यहाँ या कहीं भी वृटिश-सत्ता नहीं रह सकती, यदि इसे यहाँकी सहानुभूति-पूर्ण सन्तुष्ट प्रजाकी स्वेच्छा-प्रेरित सम्मति या सहयोग नहीं प्राप्त हो।

(आक्सफ़र्ड—२—३—१९०१)

वृटिश-ज़ाति केवल शासितोंकी सलाहसेही शासन कर सकती है।

(प्लाइमाउथ, १६—११—१९०१)

हम उदारदलवालोंको विचार और कार्यकी स्वाधीनताही प्रिय है। स्वाधीनता हमारे जीवनका मानो श्वास-प्रश्वास है। इसके दो पवित्र सिद्धान्तोंके भीतर हमारे देशकी साम्राज्य-नीति

और गृह-नीति—दोनों हीकी प्रधान-प्रधान समस्याएँ आ जाती हैं।......प्रिय शासनका यही विश्व-विदित सिद्धान्त है, जिसका मतलब प्रजाकी इच्छाके अनुसार शासन करना है। उदार-सिद्धान्तकी यह पक्की शर्त्त है, कि प्रजाका अधिकार और नियन्त्रण उन विषयों पर अवश्य होना चाहिये, जिनसे उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। इन्हीं दोनों बातोंको सोचकर उदारनीतिका प्रवर्त्तन होना चाहिये।

(नेशनल लिबरल क्लब, ५—३—१६०२)

अच्छा शासन कभी स्वराज्य अर्थात् प्रजातन्त्र-शासनकी बराबरी नहीं कर सकता।

(स्टर्लिङ्ग, २३—११—१६०५)

महिलाओं और सज्जनों! यह तो हुई शान्ति और मितव्ययिताकी बातें, जो उदार-नीतिके दो प्रबल सिद्धान्त हैं। पर एक और भी है, जिसका नाम सेल्फ-गवर्नमेण्ट अर्थात् स्वराज्य है। इसमें शासकोंपर प्रजाका नियन्त्रण आवश्यक है। हमलोग इस सिद्धान्तपर विश्वास करते हैं। इसलिये नहीं, कि यह बड़े अच्छे ढङ्गका शासन है; बल्कि इसलिये भी, कि जिस राष्ट्रको यह अधिकार प्रदान किया जाता है, उसके चरित्रपर इसका बड़ा ही लाभदायक प्रभाव पड़ता है।

(अल्बर्ट हाल, २१—१२—१६०५)

महोदय ! जिन सब विषयोंपर मैं प्रकाश डाल रहा हूं, उनके सम्बन्धमें हमें कौनसी बात सदा उद्देश्यकी तरह ध्यानमें रखनी चाहिये ? वह कौनसा ध्रुव-तारा है, जिसपर निगाह रखते हुए हमलोग ठीक दिशामें चलते चले जायेंगे ? वह यही है, कि हमें किसी खास श्रेणी या विभागके मनुष्योंकी उन्नति और सुख-सौभाग्यकी वृद्धिकी ओर ध्यान न देकर सारे राष्ट्रके हितका ध्यान रखना होगा। यही सच्ची देशभक्ति है और इसी नींवपर एक सुदृढ़ साम्राज्य खड़ा रह सकता है।

(अलवर्ट हाल; १५—१२—१६०५)

राइट आनरेब्ल जान मार्लेके उद्गार।

यदि इसके मानी दयाके हों, मनुष्यताके हों, न्यायके हों, तब तो हमें साम्राज्य-वाद सौ बार स्वीकार है ; परन्तु यदि इसके मानी स्वयं तुम्हारेही नैतिक पतनके हों, तुम्हारीही सभ्यता और मनुष्यताके भावके अधःपतनके हैं, तब तुम जिस किसीको परम मूल्यवान् समझते हो, उसीके नामपर मैं तुम्हें कहता हूं, कि इससे सावधान हो जाओ और इसका विरोध करो ?

(सिडनी, २५—५—१८६६)

जब वे (मि० ग्लैडस्टोन) मर गये, तब लार्ड सेलिसबरीने

कहा, कि वे एक बहुत बड़े ईसाई थे। ठीक है, और इतना मैं अपनी तरफ़से भी जोड़े देता हूं, कि वे नामकेही ईसाई न थे। मैं जहाँतक विचार करता हूं, वे अपने मनमें अकसरही बर्ड्सवर्थकी इस उक्तिका पारायण किया करते होंगे, कि—"राजा-रजवाड़ोंके मुंहसे सचाई और न्यायकी खोखली बातें सुनते-सुनते सारी वसुधा अघा गयी और आसमान चक्करमें आ गया।" परिणाम चाहे जो कुछ हो, वर्त्तमान राजनीतिका रुख़ चाहे जिस तरफ़ हो ; पर वे सदा न्याय और सत्यकेही विचारोंको अपने देशवासियोंके हृदयमें भरनेकी चेष्टा करते थे।......परन्तु इतना मैं अवश्य कहूंगा, कि मि० ग्लैडस्टोन जब संसारके राष्ट्रोंको बुरे रास्ते जाते देखते थे, तब उन्हें ऊपर आकाशमें नङ्गी तलवार लटकती दिखलाई पड़ती थी और प्रतिशोध-परायण देवदूतका उठा हुआ हाथ नज़र आने लगता था।

(*मैञ्चेस्टर, मूर्त्तिका उद्घाटनोत्सव,१०—१०—१६०१*)

आयर्लैण्डकी गत कई वर्षोंकी अधिकांश बुराइयों और बदइन्तज़ामियोंकी ज़िम्मेवार वही नीति है, जिसने बिना आयर्लैण्डवालोंकी मर्ज़ीके, आयर्लैण्डवालोंके लिये नये-नये क़ानून रचे।......आयरिश-सरकारको देखकर, उसका पूरा तजुर्बा हासिलकर, उसकी ज़िम्मेदारीको समझकर ही, मैं आप लोगोंसे यह बात खुले आम कहनेके लिये तैयार हूं, कि यह सरकार एक-

हम बुरी है। यह ऐसी सरकार है, जिसे कोई जाति—कोई मनुष्य-समाज—शान्तिके साथ नहीं सहन कर सकती। यह ऐसी सरकार है, जिसे सीधे और धर्मके पथपर लानेके लिये, मौक़ा पाकर हमलोगोंको सच्चे दिलसे वैसीही प्रबल चेष्टा करनी चाहिये, जैसी हमलोगोंने अपने यहाँकी सरकारको ठीक रास्तेपर लानेके लिये की थी।

(मैञ्चेष्टर, १२—३—१६०२)

देखिये, ये शब्द भारतके सम्बन्धमें कितने ज़ोरोंके साथ लागू होते हैं!—

"मान लीजिये, कि हमने केप-कालोनीकी व्यवस्थाको कुछ दिनोंके लिये स्थगित कर देनेका प्रस्ताव किया, फिर देखिये न, हाउस-आफ़-कामन्समें क्या तमाशा नज़र आने लगता है। केप-कालोनीमें जो पार्लमेण्ट द्वारा अनुमोदित संस्था जारी है,उसको स्थगित करनेके विरुद्ध झट प्रस्ताव पेश हो जायेगा। फिर तो हम सब खड़े हो-होकर लच्छेदार शब्दोंमें,वक्तृत्वकलाका कौशल दिखलाते हुए, प्रभाव-पूर्ण और युक्तिमय वक्तृता झाड़ने और उपनिवेशोंके स्वराज्याधिकारका पक्षसमर्थन करने लगेंगे। दूसरे दिन मिष्टर रेडमण्ड किसी-न-किसी ढङ्गका स्वराज्य आयर्लैण्डको दिलवानेके लिये एक प्रस्ताव ले आते हैं, तो हमारी युक्तियों और तर्कोंका तरीक़ाही पलट जाता है। सोमवारके

दिन जो बात निर्विवाद सिद्ध थी,वही मंगलवारको एकदम तुच्छ बना दी गयी। सोमवारको जो स्वराज्यका पवित्र सिद्धान्त था, वही मंगलवारको मृग-मरीचिका और मिथ्या माया-जाल हो गया! यही तो बड़ी भारी दिल्लगीकी बात है और इसीलिये मैं इसमें भाग लेना नहीं चाहता। बोअरों'को राजभक्त बनानेके लिये तो स्वराज्य दिया जाता है और आयर्लैण्ड अराजभक्त हैं, अतएव उन्हें यह अधिकार नहीं दिया जायेगा! क्या तमाशा है!"

(पडिनबरा, ७—६—१६०२)

अब ज़रा नीचेके उद्धरणको देखकर यह बात विचारमें लाइये, कि भारतीयों'के साथ कैसा व्यवहार होता है!

"हमलोग नागरिक हैं और एक बड़ेसे देशके साधारण नागरिक हैं; हमारे बाप-दादे बड़े नामी थे—हम बड़े बापके बेटे हैं; हमारा यह विश्वास है, कि मनुष्य ही चेष्टासे मनुष्यकी उन्नति हो सकती है, अतएव मैं आशा करता हूँ, कि हममेंसे प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने पद, मर्यादा, अवस्था और स्थितिके अनुसार, निस्स्वार्थ भावसे यह चेष्टा सदा जारी रखेगा, जिसमें अन्तमें गौरव-पूर्ण विजय प्राप्त हो। इस कार्यमें हमें दृढ़ताके साथ लगा रहना पड़ेगा और पूरी सादगीसे काम लेना होगा।"

(नेशनल लिबरल फैडरेशन, वार्षिक अधिवेशन १३—५—१६०१)

बेचारे मार्ले साहब स्वाधीनताके उपासक थे और वह जहाँ कहींके लोगों'को मिल सके, उन्हें स्वाधीनता दिलवानेकी चेष्टा करते थे।

इंग्लैण्ड और भारत।

मुझे इस बातका दुःख हैं, कि महारानीके भाषणोंमें भारतका नामोल्लेख तक नहीं किया जाता, उसके हिताहितकी चर्चा तो दूरकी बात है। जो हो, मैं कृतज्ञ हृदयसे इस बातको स्वीकार करता हूं, कि बृटिश-राज्यसे भारतीय प्रजाका बहुत कुछ उपकार हुआ है। मैं उन उपकारोंको कदापि तुच्छ दृष्टिसे नहीं देख सकता। साथही मैं पार्लामेण्ट या बृटिश जातिसे किसी तरहकी भिक्षा भी नहीं माँगना चाहता—यद्यपि भारत महा दरिद्र हो गया है और भिक्षुककी अवस्थाको पहुंच गया

* महारानीको जो अभिनन्दनपत्र दिया जानेवाला था, उसमें मि० नौरोजी ने कुछ संशोधन करानेके लिये पार्लामेण्टमें प्रस्ताव किया था, जिसका आशय यह था, कि हिन्दुस्तानमें जो बहुतसे युरोपियन सेना और शासन-विभागोंमें नौकर होकर जाते हैं, उनका खर्च कुछ विलायतके खज़ानेसे भी दिया जाना चाहिये; क्योंकि भारत पर प्रभुत्व होनेके कारण इंग्लैण्डकी सम्पत्तिकी बहुत कुछ वृद्धि हुई है और होती जाती है। साथही हिन्दुस्तानकी सरहदके बाहर सैनिक और राजनीतिक उद्देश्यसे जो सब कार्य किये जाते हैं, उनका खर्च भी, उचित अंशमें, बृटिश-खज़ानेसे भी दिया जाना उचित है; क्योंकि इस सब कार्यों में दोनों ही देशोंका स्वार्थ सम्बद्ध है और न्यायतः दोनोंकोही खर्चका बोझ उठाना चाहिये। यह भाषण आपने यही प्रस्ताव उपस्थित करते हुए दिया था।

है। मैं तो न्यायके नाम पर भारतके प्राप्य अधिकारोंको माँगना चाहता हूं। यह प्रश्न किसी दल-विशेषसे सम्बन्ध नहीं रखता—मैं तो जो कुछ कहूंगा, वह सारी बृटिश-जातिसे ही कहूंगा। लोग अकसर मेरी शिकायत करते हैं, कि मैं अंगरेज़ अफ़सरों पर व्यक्तिगत कटाक्ष किया करता हूं; पर बात ऐसी नहीं है। मैं उस प्रणालीकी निन्दा करता हूं, जो उन अफ़सरोंको निन्दा या कटाक्षका पात्र बनाती है। बेचारे अफ़-सर तो परिस्थितिके हाथके खिलौने हैं। इस बुरी शासन-प्रणालीने उन्हें जो रास्ता दिखाया है, उसे छोड़ कर वे और रास्ते जा ही नहीं सकते। साथही मैं जो कुछ कहता हूं, उसका सम्बन्ध देशी-रियासतोंसे नहीं, बृटिश-भारतसे है। कभी-कभी यह भी कहा जाता है, कि, मैं भारतके न्याय अधि-कारोंको उपस्थित करते समय आन्दोलनका सहारा लेता हूं, सो इसके विषयमें स्वयं कुछ न कह कर मेकालेके ही कुछ शब्दोंको यहां उद्धृत करदेना चाहता हूं, जो उन्होंने अपनी एक वक्तृतामें कहे थे। उन्होंने कहा था,—"मेरा यह स्थिर विश्वास है, कि हमें जो अनेकानेक लाभदायक सुधार प्राप्त हुए हैं, वे आन्दोलनकी ही बदौलत प्राप्त हो सके हैं। वे और तरह-से प्राप्त नहीं हो सकते थे।......सच्ची बात तो यह है, कि प्रजा-नुमोदित शासन-प्रणाली आन्दोलनसे पृथक् नहीं हो सकती।...

'बिना आन्दोलनके गुलामोंकी तिज़ारत कभी उठ सकती ? आन्दोलन न होता, तो क्या कभी गुलामोंकी प्रथा दुनियाँ अपना मुँह काला करती ? "

इसीसे मैं भी कहता हूं, कि बिना आन्दोलनके हमारी ग़ामी भी नहीं मिट सकती। हाँ, हमारा आन्दोलन शान्तिके थ होना चाहिये—निराश होकर विद्रोह करना उचित नहीं। मैं इस बात पर विचार करना चाहता हूं, कि भारत और लैण्डका जो सम्बन्ध हुआ है, उससे दोनोंको कितना लाभ हुआ है। हिन्दुस्तानकी वार्षिक आयमेंसे गवर्नमेण्टने सत्तर-रोड़ रूपयेके लगभग सरकारी खर्चमें लगाये। इसका परि-ाम शान्ति और व्यवस्थाकी स्थापना है, जो किसी अच्छे ज्यका सबसे बड़ा दान है और जिसे भारत-निवासी हृदयसे सन्द करते हैं; क्योंकि कौन चाहता है, कि हमारे शरीर, प्राण रि धन सम्पत्ति पर आये दिन विपद् घहराती रहे ? भारतको उससे जो लाभ पहुंचा, उसे मैं स्वीकार करता हूं और साथही ह पूछना चाहता हूं, कि क्या इस शान्ति और व्यवस्थामें भारतीयोंको अपेक्षा अंगरेजोंकाही अधिक लाभ नहीं हुआ ? या यह उनकी शक्तिकी वृद्धि करनेवाली नहीं हुई ? हिन्दू-तथा और मुसलमान भी, (जिनमेंसे अधिकांश हिन्दू-सन्तान ही हैं) स्वभावतः ही, अपने बाप-दादोंकी तरह, शांति-प्रिय और न्न

स्था-कामी हैं। उनके जो चार बड़े विभाग किये गये थे, वे उनकी शान्ति-प्रियताके नमूने हैं। उनका एक वर्ग विद्या-व्यवसायी था—उसे तो केवल शांतिकी ही अभिलाषा रहती थी। दूसरा वर्ग देशका शासन, रक्षण और शत्रुसे युद्ध करनेमें ही प्रवृत्त रहता था। तीसरा और बड़ा वर्ग उन लोगोंका था, जो कला-कौशल, कृषिकार्य और व्यवसाय-वाणिज्य आदिमें प्रवृत रहते थे। इन्हें तो अपना कार्य सुचारु रूपसे चलानेके लिये शाँति और व्यवस्थाकी सबसे बढ़कर आवश्यकता रहती थी। चौथा वर्ग, जो सेवक-सम्प्रदाय था, वह तो स्वभावसे ही नम्र, शांति-कामी और व्यवस्था-प्रिय था। इस प्रकार हिन्दुओंने तो हज़ारों लाखों वर्षोंसे शाँति और व्यवस्थाको धर्मसा समझ रखा हैं। सच पूछिये, तो हिन्दुओंके इस जन्मगत संस्कारने ही अंगरेज़ोंके वर्त्तमान शांतिमय शासनको भारतमें स्थिर रखा है। यदि यह भाव किसी दिन बदला तो इंग्लैण्डका ही अपराध समझा जायेगा। कोई-कोई कहते हैं, कि भारत तलवारके ज़ोरसे जीता गया है और तलवारके ही ज़ोरसे इस पर सदा हकूमत की जायेगी; परन्तु जहाँ तक मेरा विश्वास है, यह विचार इंग्लैण्डके सभी लोगोंका नहीं है। अपनी इस बातकी पुष्टिमें मैं वर्त्तमान समयके सर्वश्रेष्ट भारतीय सेनापति

लार्ड राबर्ट्सके कुछ बहुमूल्य शब्द सुना देना चाहता हूं। उन्होंने कहा है,—

"चाहे भारतीय सेना लाख सुसज्जित और सुचतुर क्यों न हो, इसमें कहींसे असम्पूर्णता भले ही न हो, और संख्यामें आजकी अपेक्षा बहुत बढ़ी हुई हो, तो भी हमारा सबसे बड़ा बल यही है, कि वहाँकी प्रजामें एकता और सन्तोष हो।"

देखिये, उनके कहनेका भाव कैसा उच्च था! इस समय भारतको न्यायतः जितने लाभ मिलने चाहियें, उनकी अपेक्षा उसे बहुतही कम लाभ मिल रहे हैं। तरह-तरहके युरोपियन अफ़सरोंको देनेके लिये लाखों रुपये हिन्दुस्तानके बाहर खींच लिये जाते हैं। इसके बदलेमें उसे कुछ भी नहीं मिलता। इस प्रकार देशकी पूंजी छीजती चली जाती है और बेचारे भारतीयोंके पास पैसा नहीं रहने पाता। वर्त्तमान शासन-प्रणालीकाही यह प्रताप है, कि भारतकी उपज और कला-कौशल भी इसके हाथसे छिनकर अंगरेज़ों और अन्यान्य विदेशियोंके हाथमें चले जा रहे हैं। प्रति वर्ष ३० करोड़के लगभग जो रुपया इण्डिया-आफ़िसको हिन्दुस्तानसे भेजा जाता है, वह एक नहीं—अनेक प्रकारसे अंगरेज़ोंकेही लाभके लिये लिया जाता है। सच पूछिये, तो वृटिश-भारत वृटेनकाही है, भारतका नहीं। प्रति वर्ष जो ७० करोड़ रुपया भारत-देशसे वसूल किया जाता है, उसमेंसे

प्रायः २० करोड़ तो यहीं आ जाता है और युरोपियनोंके वेतन, भत्ते और पेन्शनमें सर्फ़ हो जाता है। इस ज़बर्दस्तीसे वसूल किये हुए रुपयेसे वहाँवालोंके तो पेट भरते हैं और वेचारे भारतीय पूँजी-हीन होकर दरिद्र जीवन व्यतीत करनेको बाध्य होते हैं। इस तरह सूद और मूल समेत करोड़ों रुपये हिन्दुस्तानसे विलायत होकर चले आय। हज़ारों युरोपियनोंको भारतमें अच्छी-अच्छी नौकरियाँ मिलती हैं और वेचारे हिन्दुस्तानियोंको कोई पूछताही नहीं, जिससे उनकी रोटी तो छिनती ही है, उनका दिमाग़ भी ख़राब होता चला जाता है। यही नहीं; इस लगड़ी दशाने भारतको अपनी प्रत्येक आवश्यकता पूर्ण करनेके लिये अंगरेज़ोंका ही मुखापेक्षी बना दिया और इन लोगोंने वृटिश अफ़सरोंकी मददसे सब जगह एकाधिपत्य जमा लिया। इस प्रकार वृटिश-भारत, अँगरेज़ अफ़सरोंके सिवा, भिन्न-भिन्न व्यवसाय करनेवाले अँगरेज़ोंके खाने-कमानेकी जगह है। कहीं तो अँगरेज़ व्यापारी लूट रहे हैं, कहीं पूँजी-पति मार रहे हैं, कहीं निलहे साहब ऊधम मचा रहे हैं, कहीं साहबोंके जहाज़ चलते हैं और कहीं रेलें जारी हैं। बेचारे भारतीय हलकी नौकरियोंपरही गुज़ारा करते हैं और जो कुछ थोड़ी-बहुत मज़दूरी मिल जाती है, उसीपर सब्र कर लेते हैं। एक प्रकारसे हिन्दुस्तानकी साधारण

जनता दक्षिणी राज्योंके गुलामोंसे भी बुरी हालतमें है। गुलामोंको तो उनके मालिक अपनी चीज़ समझते थे और उनकी हर प्रकारसे रक्षा करते थे। परन्तु चाहे दस लाख भारतीय बेमौत मर जायें, तोभी कोई पूछने नहीं आता। बेचारे गुलाम अपने मालिकोंकी ज़मीन या कारखानोंमें काम करते थे, जिससे उनके मालिकोंको लाभ होता था। हिन्दुस्तानियोंको तो अपनी ही जमीनमें काम करके उसका लाभ परदेशी प्रभुओंको सौंप देना पड़ता है। मान लीजिये, भाग्यके फेरसे कभी कोई ऐसा दिन भी आजाये—ईश्वर न करे, कि वह दिन आये—कि इंग्लैण्डको कुछ विदेशी लोग आक्रमणकर अपने अधीन कर लें। यह बात कुछ अनहोनी नहीं है। जब सीज़र इस (इंग्लैण्ड) देशमें आया था, तब उसने यहां केवल जंगली ही आदमी देखे थे। उस समय भला कौन इस बातका सपना भी देख सकता था, कि एक दिन उन्हीं जंगलियोंके वंशधर संसारके सबसे बड़े साम्राज्यके अधीश्वर होंगे और इटली तथा रोम, जिनका दबदबा उस समय सारे संसारपर फैला हुआ था, केवल भूगोल पढ़नेवालोंके कामकी चीज हो जायेंगे! अच्छा, तो मान लीजिये, कि इस पार्लमेन्ट-भवनसे सभी अंगरेज निकल गये और उनकी जगह विदेशी भर गये अथवा इसके द्वारही बन्द कर दिये गये। इसके बाद उन विदेशि-

योंने सभी अधिकार अपने हाथमें कर लिये और प्रतिवर्ष यहाँका धन ढो-ढोकर अपने देशमें ले जाने लगे—कहनेका मतलब यह, कि इंग्लैण्ड भारतकी वर्त्तमान अवस्थाको पहुंच गया। क्या अंगरेज़ लोग एक दिनके लिये भी, शरीरमें प्राण रहते, इस तरहकी अवस्थामें रहना स्वीकार करेंगे? अंगरेज़ लाख शान्ति-प्रिय, क़ानून-पसन्द और व्यवस्था-प्रिय क्यों न हों, पर उनकी सब शान्तिप्रियता उस समय काफ़ूर हो जायेगी। अंगरेज़ कभी ऐसी अवस्थाको पसन्द नहीं कर सकते। वे तो सदा यही गाते हैं और गाते रहेंगे, कि अंगरेज़ कभी किसीके गुलाम न होंगे। ईश्वर करे, उनका यह सङ्गीत सदैव इसी तरह गूंजता रहे। अब मैं पूछता हूं, कि आप तो गुलाम न होंगे; पर क्या औरोंको गुलाम बनायेंगे। नहीं—किसीको गुलामीमें बाँधना अंगरेज़ोंके मनोभावके विरुद्ध है। उनका यह सदासे लक्ष्य रहा है और होना भी चाहिये, कि गिरे हुओंको ऊपर उठाकर अपनी बराबरीका बनायें। भारत जो अबतक राजभक्त और आशावान् बना हुआ है, उसका कारण यही है, कि उसे अंगरेज़ोंकी इस स्वाभाविक न्यायप्रियता पर विश्वास है। इसमें कोई शक नहीं, कि भारतका शासन सूत्र हाथमें आ जानेसे इंग्लैण्ड को भारतसे बहुत कुछ नफा उठानेका मौका मिला; परन्तु

वर्त्तमान घृणित शासन प्रणालीके दोषसे भारतको इंग्लैण्डसे कुछ भी भौतिक लाभ नहीं हुआ। यदि तर्कके अनुरोधसे हम यह मान भी लें, कि जो भौतिक लाभ भारतसे वृटेनको प्राप्त होता है, उसके बराबर ही लाभ भारतको भी वृटेनसे प्राप्त होता है, तोभी अंगरेज़ोंको इस लाभके लिये भारतके सिरके बोझ में बराबर हिस्सा बटाना चाहिये। लार्ड सैलिसबरीने इसे अच्छी तरह समझा दिया था। उन्होंने कहा था,—"भारतके सम्बन्धमें तो यह अपराध और भी अधिक हो गया है, जहाँकी मालगुज़ारीका बहुत बड़ा हिस्सा योंही देशसे बाहर चला जाता है—उसके बदलेमें उसे कुछ भी नहीं मिलता। ध्यान यही है, कि भारतका खून चूस लेना चाहिये। इसीलिये जिन भागोंमें खून काफ़ी जमा है, उन्हींपर नश्तर लगाया जाता है और जिन जगहोंमें खूनका पता तक नहीं है उनकी ओर आंख उठाकर देखा भी नहीं जाता।"

यह बात ठीक है, और वर्त्तमान दुष्ट शासन प्रणालीको देखकर तो अंगरेज़ोंका यही उद्देश्य मालूम होता है, कि भारतको खूब चूस लेना चाहिये। इसीलिये तो हमारे यहाँके अर्थ-मन्त्रीगण हरसाल रुपयेकी कमी और भारतकी दरिद्रता का ही रोना रोया करते हैं और अर्थ-समस्याको सुलझा नहीं पाते। भारतकी दरिद्रताके जैसे कारण

अनेक हैं, वैसेही परिणाम भी वहुविध हैं। इस समय इस प्रश्न पर पूर्णरीत्या विचार नहीं किया जा सकता। विदेशी प्रभुत्वके इस वर्त्तमान प्रकारने ही यह दशा उपस्थित कर रखी है, जिसकी भविष्यद्वाणी आज से १०० वर्ष पहले सर जॉन श्रोरने की थी। भारत और इंग्लैण्डकी दशाकी तुलना का ज्ञान करनेके लिये मैं एक वहुतही मार्केकी वात आपलोगोंके सामने पेश करना चाहता हूं। गत वर्ष भारतके सेक्रेटरी आफ स्टेटने भारतीय वजटपर विचार करनेवाली कमेटीके सामने कहा था,—

"रही वात राजकीय आयकी, सो उसके सम्बन्धमें मैं जो आँकड़े आपलोगोंके सामने पेश करूँगा, वे विचार करने योग्य हैं। इंग्लैण्डमें फी आदमी २ पौण्ड, ११ शिलिङ्ग, ८ पेन्सका कर नियत है। स्काटलैण्डमें २ पौण्ड, ८ शिलिङ्ग, १ पेन्स और आयरलैण्डमें १ पौण्ड, १२ शिलिंग है। किन्तु कल जो वजट मैं आपलोगोंके सामने पेश करूँगा, उससे आपलोगोंको मालूम होगा, कि भारतमें फी आदमी केवल २ शिलिंग ६ पेन्स का ही कर नियत है। यह रकम इंग्लैण्डकी रक़म की १/२० और आयर्लैण्ड की १/१३ है।"

इसपर फिलन्टशायरके प्रतिनिधि मिस्टर एस० लिथने पूछा,

—"इसमें आपने भूमि कर को सम्मिलित नहीं किया है न ?"

सेक्रेटरी साहबने कहा,—"हाँ, भूमिकर छोड़कर फ़ी आदमी २ शिलिंग ६ पेन्सका टैक्स लगता है। एक रुपयेमें १ शिलिंग, १ पेन्स होता है।"

भूमि-कर को छोड़कर करकी कमी दिखलाना घोर अन्याय की बात थी; परन्तु इसपर आज क्या बहस की जाये ? भूमि-कर कुछ आसमानसे तो टपकता नहीं है ? सरकार जो भिन्न-भिन्न नामोंसे प्रतिवर्ष यहांका रुपया इकट्ठा करती है, भूमिकर भी तो उसीमें शामिल है ? इसका मतलब यह है, कि हिन्दुस्तान की पैदावार में से इतना सरकार ने लिया। इंग्लैण्डके टैक्सोंका जो आंकड़ा सेक्रेटरी साहबने पेश किया था, उसमें सब तरहके कर शामिल हैं; अतएव उन्हें हिन्दुस्तानका भूमि करभी जोड़कर बतलाना चाहिये था, कि फ़ी आदमी कितना टैक्स पड़ता है। उनको तो यही दिखलाना था, कि हिन्दुस्तान-वालोंको इंग्लैण्डवालोंसे कम टैक्स देना पड़ता है। सभी सरकारी अधिकारियोंकी यही कल्पना है, कि हिन्दुस्तानियोंपर टैक्सका बोझ बहुतही कम है। परन्तु इस कमीपर निगाह ले जानेवालों को यह भी तो देखना चाहिये, कि यहांके टैक्स देनेवालोंकी हैसियत क्या है ? एक हाथीके लिये मनों बोझ उठा लेना कोई बड़ी बात नहीं है; पर चींटीके लिये तो चौथाई औंस

या ? ग्रेनका बोझाही बहुत है। वह बेचारी तो इसी इतने बोझ से दबकर मर जायेगी। यदि दोनों देशोंकी योग्यताका विचार किया जाये, तो इंग्लैण्डवालोंकी आमदनी लगभग ३२ पौण्ड सालाना है, अर्थात् उनकी आमदनीपर फ़ीसदी ७ के हिसाबसे टैक्स लगा। इधर सरकारी कागज़पत्रोंसे ही साबित है, कि प्रत्येक भारतवासीकी आमदनी केवल २७) सालाना है। मेरे हिसाबसे तो एक भारतवासीकी आमदनी २०) सालसे अधिक नहीं है। इस आमदनीपर जो टैक्स लगाया गया, वह फ़ी सैकड़े १० या ११ अथवा यदि २०) वाली बातही मानी जाये, तो १४ के हिसाबसे पड़ जाता है अर्थात् इंग्लैण्डवालोंकी अपेक्षा यहाँ वालोंपर दूना बोझ है। इसलिये यह जो कहा जाता है, कि हिन्दुस्तानपर टैक्सका बोझ बहुत ही कम है वह एकदम मिथ्या है। मेरा तो कहना यह है, कि भारतवासियोंपर इंग्लैण्डवालोंसे दुगना बोझ है और चूंकि भारतीय बड़े ही दरिद्र हैं, अतएव उनसे इतना कड़ा कर वसूल करना मानों उनपर घोर अत्याचार करना है। यही नहीं, हिन्दुस्तानकी अवस्था और तरहसे भी बहुत बुरी है। विलायतमें जो १००,०००,००० पौण्ड राजकर वसूल होता है, उसका एक-एक पैसा भिन्न-भिन्न रूपमें करदाताओंके पास पहुंच जाता है। परन्तु भारतमें जो प्रायः ७००,०००,०००) के करीब राजकर

संग्रह होता है, उसमेंसे २० करोड़ तो बेदाग विदेशी अफ़-सरोंकी जेबमें पहुंच जाते हैं, इसके सिवा २०) सालाना आमदनीमेंसे भी तरह-तरहसे अँगरेज़ोंके ही घर पैसा पहुचता रहता है। अगर समुद्रका पानी भी रोज़ खर्च ही हो और एक बूंद भी भरे नहीं, तो वह भी किसी दिन सूखही जायेगा। अगर हमारे यहाँ जैसी खिंचाई इंग्लैण्डसे भी होने लगे, तो सम्पत्तिशाली इँग्लैण्ड भी किसी दिन दरिद्र ही हो जायेगा। मैं आशा करता हू, वैसी अवस्थामें भारतको ब्रिटिश शासनसे कुछ भी लाभ नहीं प्राप्त होगा, इस बातको पार्लामेण्टके सभी माननीय मेम्बर स्वीकार करेंगे। मैं कुछ क्रोधके साथ नहीं कहता, बल्कि दुःखके साथ कहता हूँ, कि अपनी जन्मभूमि और कर्म्मभूमि दोनोंके ही लिहाज़से मैं यह चाहता हूं, कि भारतमें इस समय जो कुत्सित शासन प्रणाली प्रचलित है, उसे उठाकर धर्म्मकी भित्तिपर अवलम्बित प्रणाली प्रचलित की जाये, जिसमें इंग्लैण्ड और भारत, दोनोंको ही लाभ हो। फिर तो हिन्दुस्तानके लोग इस अंगरेज़ी शासनको ईश्वरका वरदान समझने लगें और इसकी कभी निन्दा न करें तथा इंग्लैण्ड भी आजकी अपेक्षा दसगुना सुखी हो जाये। सुखी, सन्तुष्ट और न्यायसे शासित-पालित भारतके सहारे इंग्लैण्ड आधा दर्जन रूसको भी मटिया फूस ही गिन

सकता है और वह यदि किसी दिन भारतकी ओर रुख करे, तो उसे खदेड़ते-खदेड़ते सेन्ट पिटर्सबर्ग तक खदेड़ कर ले जा सकता है। वैसी अवस्थामें प्रत्येक भारतीय अपने देशके लिये, अपने घरके लिये, अपने मानके लिये, प्राण देनेको तैयार मिलेगा। अकेले पञ्जाबसे ही एक बहुत बड़ी प्रबल सेना मिल जा सकती है। मैं पुनः तर्कके अनुरोधसे यह बात माने लेता हूँ, कि भारतसे इंग्लैण्डवालोंको जितना लाभ है, उतना ही भारतीयोंको भी है। इसपर मैं कहूँगा, कि जिस शासन-व्ययकी बदौलत यह लाभ दोनों पक्ष उठा रहे हैं, उसका भार दोनोंको बराबर-बराबर उठाना चाहिये, क्योंकि दोनोंही समान लाभ उठाते हैं। परन्तु अपने संशोधनमें मैं अँगरेज़ी प्रजाको आधा खर्च देनेके लिये भी नहीं कहता। सिर्फ़ जो ख़र्च अँगरेज़ अफ़सरोंको देनेमें होता है, और जिसका एकमात्र उद्देश्य बृटिश-राज्यको भारतमें स्थायी बनाना है, उसीका उचित भाग अँगरेज़ोंको अपनी जेबसे देना चाहिये। अगर यह अँगरेज़ी सलतनतको मज़बूत बनानेके लिये नहीं है, तो कोई आवश्यकता नहीं, कि युरोपियनोंको नौकर रखकर बेहिसाब रुपया ख़र्च किया जाये और हिन्दुस्तानकी सम्पत्ति समुद्रके पार पहुँचायी जाये। १८९३के

मई महीनेमें एकबार लार्ड रायर्ट् सने लण्डनमें व्याख्यान देते हुए कहा था,—

"मैं यह जानकर सुखी हुआ, कि आपलोग इस बातको समझते हैं, कि संयुक्त-राज्य ग्रेट-ब्रिटेनकी सुख-समृद्धिके साथ उस वृहत् पूर्वीय साम्राज्यके स्वाधिकार भुक्त होनेका अविच्छिन्न सम्बन्ध है।"

परन्तु जब भारत और इग्लैण्डके स्वार्थोंका इस प्रकार अविच्छिन्न सम्बन्ध है, तब यही उचित और न्यायानुमोदित मालूम होता है, कि अपने स्वार्थोंके बदलेमें दोनोंही बराबर बराबर व्यय-भार वहन करें, १८६३में मैनशन-हाउसमें व्याख्यान देते हुए लार्ड किम्वर्लेने कहा था,—

"हमलोग इस बातके लिये सुदृढ़-सङ्कल्पी हैं, कि अपने भारतीय साम्राज्यपर अपना प्रभुत्व सदा बनाये रखें।...और-और बातोंके अतिरिक्त सिविल-सर्विसमें युरोपियनोंकी भरमार भी इस प्रभुत्वको बनाये रखनेमें सहायक होगी।......... हमारा अवलम्ब उस विशाल और सुयोग्य गोरी पलटनपर भी है, जो हमने वहां खड़ी कर रखी है।"

परन्तु मेरे ख़यालसे गोरे नौकरशाहों और गोरे अधिवासियोंपर भरोशा करना व्यर्थसा है। जब कभी १८५७ कीसी दुर्घटना उपस्थित होगी, तब युरोपियनोंको ही जानोंको बड़ी

आफ़त है—वे चारों ओरसे भयसे घिर जाते हैं और उनकी जान बचानेकी पड़ जाती है। ऐसे मौकोंपर हिन्दुस्तानी ही अँगरेजोंकी जान बचा सकते हैं। १८५७ में उन्होंने बचायी भी है। यह सोचना, कि सिविल सर्विसवाले या और अंगरेज़, जो हिन्दुस्तानमें रहते हैं, साम्राज्यकी रक्षा कर सकेंगे, बिल्कुल ख़ाम-ख़याली है—रक्षा हिन्दुस्तानियोंको सन्तुष्ट रखनेसेही हो सकती है। अँगरेजोंका सैनिक बल चाहे *कितना भी बढ़ा हुआ क्यों न हो; पर भारतमें उनका राज्य* केवल भारतवासियोंके सन्तुष्ट रहनेपर ही निर्भर है। पशु-बलके द्वारा एक साम्राज्यपर दख़ल कर लिया जा सकता है; परन्तु पशु-बलसेही वह सदा मुट्ठीमें रह सकेगा, ऐसी आशा व्यर्थ है। इसकी स्थिरताके लिये नैतिक बल—न्याय और धर्मके पालनकी आवश्यकता है।

यदि मैं यह कहता, कि युरोपियनोंके निमित्त जो कुछ ख़र्च किया जाता है, वह सब इंग्लैण्डके सरकारी ख़ज़ानेसे दिया जाना चाहिये, तो भी कुछ अन्यायकी बात न होती; परन्तु मैं तो तर्कके अनुरोधसे यह भी माने लेता हूं, कि युरोपियनोंकी *नियुक्तिसे भारतीयोंको भी उतनाही लाभ है,* जितना अंगरेज़ोंको; इसलिये कमसे-कम आधा ख़र्च तो वृटिश-राजकोषसे दिया जानाही चाहिये। हिन्दुस्तानियोंको इस बातका प्रायः

भय दिखलाया जाता है, कि यदि वे आर्थिक सम्बन्धकी बात उठायेंगे, तो नौ-सेनाके खर्चकी बात भी उठेगी। परन्तु मैं तो यह कहता हूं, कि जो थोड़ेसे जहाज़ हिन्दुस्तानमें रहते हैं, उनके खर्चके सिवा और कुछ माँगनेका इंग्लैण्डको क्या हक़ है? न्याय-बुद्धि कभी यह सवाल उठने नहीं देगी। नौ-सेनाका यश, लाभ और गौरव इंग्लैण्डका अपनाही तो है। कहा जाता है, कि इस नौ-सेना द्वारा भारतीय व्यापारकी रक्षा की जाती है। परन्तु भारतसे बाहर या बाहरसे भारतमें एक भी तो ऐसा जहाज़ नहीं जाता-आता, जो भारतीयोंका हो। सब जहाज़ अँगरेज़ोंके हैं। यही नहीं, उनपर माल भी तो सब विलायतीही लदकर आता है। हिन्दुस्तानसे जानेवाली चीज़ोंपर भी तो अँगरेज़ोंका ही रुपया बैंकोंकी मारफ़त चढ़ा हुआ रहता है। इस प्रकार जहाजोंकी लदाई, आवा-जाई और माल वगैरहपर अँगरेज़ोंकाही रुपया लगता है। इसके सिवा, इन सौभाग्यशाली टापुओंकी रक्षाके लिये भी तो नौ-सेनाकी बहुत बड़ी आवश्यकता है? हरसाल, हरपार्टीवाले बजटके समय इसी बातपर ज़ोर देते हैं, कि ग्रेटब्रटेनकी रक्षाके लिये यह आवश्यक है,कि उसकी नौ-सेना किन्हीं दो युरोपियन शक्तियोंके मुक़ाबिलेकी हो। मैंने सेक्रेटरी-आफ़-स्टेट साहबसे कई हिसाब माँगे हैं, जब वे उन्हें हमें दिखायेंगे, तब आप लोग

भारतकी यथार्थ स्थितिको समझ सकेंगे। जबतक ये हिसाब नहीं पेश किये जाते, तबतक कुछ भी नहीं मालूम हो सकता, कि वर्त्तमान शासन-प्रणालीके कारण भारतकी कैसी अवस्था हो रही है। हम भारतवासियोंपर जो तरह-तरहके कर खोज-खोज कर लगाये गये हैं, वैसे कर आप लोग उपनिवेशोंपर कभी नहीं लगा सकते थे। ये सब छोटी-मोटी बेईन्साफ़ियाँ तो किसी गिनतीमें ही नहीं हैं। इण्डिया-आफिस और इंजिनियरिंग कालेजकी इमारतें बनवाने, सैनिक भर्त्ती करने और थोड़े-थोड़े दिनोंके लिये अंग्रेज़ोंको नौकर बनाकर भेजने और उनके आने-जानेका व्यय देनेमें जो कुछ खर्च हुआ या होता है, वह सब भी तो हमारे ही सिर घहराता है। अभी उस दिन मैं उस सभामें गया था, जिसमें अर्मेनियनोंके अत्याचारकी बात छिड़ी हुई थी। मैं अँगरेज़ोंकी उस उदार चेष्टाको दिलसे सराहे बिना न रह सका, जो उन्होंने पीड़ितों और दुःखितोंके रक्षार्थ की थी। यही सब तो अँगरेज़ोंके चरित्रकी मूल्यवान् विशेषताएं हैं। अब उन्हीं उदार अँगरेज़ोंसे मैं यह कहना चाहता हूं, कि जब आप युद्धमें किये हुए अत्याचारोंके शिकार बननेवाले लोगोंका दुःख देखकर करुणासे इतने आर्द्र हो गये, तब आप इस बातपर क्यों नहीं विचार करते, कि हिन्दुस्तानमें लाखों मनुष्य हरसाल काल और महामारीके शिकार होते रहते हैं

और करोड़ों जीव सालके साल आधा पेट खाकर ही दिन बिता देते हैं ? इसका क्या कारण है, कि सैकड़ों वर्षके शासनके बादभी—और वह शासन करनेवाले भी कौन हैं ? दुनियाँ भरमें सबसे ऊँची तनख्वाह पानेवाले अँगरेज़ अफ़सर—भारत इस योग्य नहीं हुआ, कि वह ग्रेट-ब्रिटेनका २० वाँ और गरीब आयर्लैण्डका १३ वाँ हिस्सा भी कररूपमें दे सके। क्या अंगरेज लोग अपने शासनके इस परिणामसे सन्तुष्ट हैं ? यह क्या उनकी प्रशंसाका कारण होगा ? इधर ज्यों-ज्यों इंग्लैण्ड की सम्पत्ति बढ़ती गयी, त्यों-त्यों उधर भारत दरिद्र होता चला गया। हिन्दुस्तानकी सालाना आमदनी फ़ी आदमी २ पौण्ड या वर्त्तमान एक्सचेञ्जकी दरके मुताबिक २० शिलिंग है। इधर इंग्लैण्डके लोगोंके तो ४ पौंड फ़ी आदमी केवल शराब पीनेमें ख़र्च होते हैं। जिस शासनका परिणाम बहुतही अच्छा होना चाहिये था, उसका यह दुष्परिणाम तो बड़ेही दुःखकी बात है। मैं इस देशके लोगोंसे प्रार्थना करता हूं, कि आप लोग इस प्रश्नपर ख़ूब गौर करें ? अगर आज यहाँ अकाल पड़े, तो सारी दुनियाँसे अनाज ढो-ढो कर आने लगेगा। ऐसेही भारतमें भी क्यों नहीं आता ? वहाँ क्यों ऐसी दुर्दशा लोगोंकी हो रही है, कि असंख्य मनुष्योंको तो भरपेट भोजन भी नसीब नहीं होता ? वृटेनने भारतको आपसकी मार-काट

से बचाया है, इसमें कोई सन्देह नहीं ; पर क्या वह करोड़ों भारत वासियोंको अकाल और महामारीके चङ्गुलसे नहीं बचा सकता, जो कि उसी बुराईके परिणाम हैं, जिसकी भविष्यद्वाणी सर जान शोरने की थी ? स्वर्गीय मिस्टर ब्राइटने अपने मैनचेस्टरके मित्रोंसे कहा था, कि हमारे लाभ उठानेके दो रास्ते हैं— एक तो लूट-खसोट दूसरा व्यापार—मैं इसी दूसरे रास्तेको पसन्द करता हूं। वर्त्तमान समयमें भारतके साथ इंग्लैण्ड का व्यापार एक दुःखदायक प्रसंगही है। अभी विलायतकी बनी हुई चीजोंमेंसे फ़ी आदमी फ़ी साल औसत २ शिलिंगका माल आता है। यदि भारत सुखी होता, उसके पास माल खरीदनेका पैसा होता, तो इंग्लैण्डको वरकी या बाजारमें मांगकी कमीकी शिकायत नहीं करनी पड़ती। भारतमें ३० करोड़ सभ्य मनुष्य रहते हैं। यदि इन लोगोंकी जरूरतें पूरी की जायें और मुक्तद्वार व्यापारकी नीतीका नियन्त्रण इंग्लैण्ड अपने ही हाथ में रखे, तो इंग्लैण्डको अपने शब्दकोषसे बेकारी शब्दको ही निकाल डालना पड़े। सच पूछिये तो जितनी भारतमें माँग हो सकती है, उतना माल इंग्लैण्ड कभी पहुंचा न सकेगा। अभी उस दिन चान्सेलर-आफ-एक्सचेकरने कहा था, कि जहाँ अन्याय और बुराइयाँ फैली हुई हों, जैसी कि आर्मेनिया की हालत हो रही है, वहाँ उदार-मत-वादिनी सर-

कार उस अन्याय और तमाम बुराइयोंको दूर करनेके लिये समस्त युरोपियन शक्तियोंकी सहायता लेकर अपना यह उद्देश्य सिद्ध करती है। क्या मैं उन्हीं माननीय सज्जनसे भारतवर्ष की दशाका शीघ्र और सोदार विचार करनेको प्रार्थना कर सकता हूं? मिडलोथियनके माननीय सज्जनने अपने जन्मदिवसके उपलक्षमें एक बड़ेही मार्केकी वक्तृता दी थी और आर्मेनियाके प्रश्नकी ओर सबका ध्यान आकर्षित किया था। अब मैं उन्हीं से और उनकेसे विचार रखनेवाले अन्य सज्जनोंसे प्रार्थना करता हूँ, कि आप लोग इस बातका विचार करें, कि इसका क्या कारण हैं,कि यद्यपि बृटिशोंके अधिकृत भारतमें पैदावारकी कमी नहीं है, तोभी क्यों चार-पाँच करोड़ आदमी एकदम निःस्व हैं और लाखों आदमी अकालके कारण प्राण-त्याग करते हैं? वर्त्तमान संशोधनमें मैं यही प्रस्ताव करना चाहता हूँ, कि अँगरेज़ लोग भी हिस्सेके मुताबिक हिन्दुस्तानके ख़र्चमें हाथ बटायें। मैं कुछ दयाकी भिक्षा नहीं करता, सीधी तरहसे न्यायकी भिक्षा करता हूं। कुछ ऐसे खर्च हैं जिनकी बदौलत दो हिस्सेदारोंका लाभ होता है—ऐसी अवस्थामें दोनों हिस्सेदारोंको वह ख़र्च आपसमें बाँट लेना चाहिये। मेरा यह भी प्रस्ताव है, कि हिन्दुस्तानकी सीमाके बाहर जो सैनिक खर्च हो, उसको भी केवल हिन्दुस्तानियोंसे ही नहीं वसूल

किया जाये। मेरी यह पक्की राय है, कि अगर इंग्लैण्ड अपने राज्यकी रक्षाके लिये वर्मा, अफ़ग़ानिस्तान या हिन्दुस्तान की सरहदके बाहर अन्य स्थानोंमें युद्ध आदि ठाने दे, तो न्यायतः उसे आधा खर्च आप उठाना चाहिये। इन सब कारवाइयोंसे बृटेन और भारत दोनोंको ही लाभ पहुंचना सम्भव है। यह सिद्धान्त गत अफ़ग़ान-युद्धके अवसरपर स्वीकार किया गया था। यह युद्ध कुछ आवश्यक नहीं था, तोभी उदार सरकारने उसके खर्चका थोड़ा ही सा हिस्सा दिया था। यह बात बड़े अन्यायकी है और साथही बृटिश-प्रजाके लिये अनुचित भी है, कि जो सब छोटी-मोटी लड़ाइयां उनके राज्यकी वृद्धि या रक्षाके लिये हिन्दुस्तानकी सीमाके बाहर लड़ी जाये, उन सबका खर्च हिन्दुस्तानसे ही वसूल किया जाये, यद्यपि इन सबसे लाभ सोलह आने अँगरेज़ी सलतनतको ही है, भारतवासियोंको नहीं। मैं आशा करता हूँ, कि मेरी ये बातें अनसुनी न कर दी जायेगी। मैं यह जानता हूँ, कि जब कभी कोई प्रार्थना न्याय, धर्म और सम्मानके नामपरकी जाती है, तब अँगरेज लोग उसे जरूर मान लेते हैं। अँगरेजोंके चरित्र पर मेरा पूर्ण विश्वास है, इसीसे मैं जहाँतक समझता हूँ, मेरी बातें अरण्यरोदन न हो जायेंगी। सौ बातोंकी एक बात तो यह है, कि इस बातका फैसला हो जाना चाहिये, कि बृटिश

भारतके लोग वृटिश-नागरिक हैं या गुलाम? यदि नागरिक हैं—और मैं आशा करता हूँ कि सभी अँगरेज यही चाहते होंगे, कि वे नागरिक समझे जायें—तो उन्हें वृटिश-नागरिकोंके जन्मसिद्ध अधिकार और उत्तरदायित्व सौंप देने चाहिये। उनसे न्यायके साथ वर्त्ताव कीजिये और उनके ख़र्चमें लाभानुसार हिस्सा बटाइये। अभी हालमें लङ्काशायरके व्यापारियों और भारतीय सरकारके बीच जो व्यर्थकी चखचख चल रही थी, उसने अच्छी तरह साबित कर दिया कि भारतकी कैसी निस्सहाय अवस्था हैं। यही तो यथार्थ स्थिति है। भारत गवर्नमेण्टने मनमाने तौरसे २०।२५ लाखका बोझ भूखे भारतवासियोंपर लाद दिया और मोटी तोंदवाले अफ़सरोंकी जेब भर दीं। वह बराबर युरोपियन अफ़सरोंका खर्च बढ़ाती चली जाती है। भारतीय सरकारको जब कभी रुपयेकी ज़रूरत होती है तब वह लार्ड सैलिसबरीकी सलाहके मुताबिक जहाँ खून देख पाती है, वहीं चूसनेके लिये दाँत गड़ा देती है। साथही देशी रियासतोंमें भी चलानी मालपर कर लगाकर पैसा वसूल करती है। लङ्काशायरवाले इसपर आपत्ति करते हैं और वहांसे खून निकालनेकी सलाह देते हैं, जहाँ दाँत गड़ानेसे उनके निजके स्वार्थमें हानि नहीं पहुंचे। इसीलिये तो दोनोंमें झगड़ा हुआ। अन्तमें यही तै पाया, कि भारतवासियोंकाही

रक्त शोषण किया जाये। बस सारा झगड़ा तमाम हो गया। मैं लङ्काशायरवालोंके स्वार्थीपनकी निन्दा नहीं करता। सबको स्वर्थी होनाही चाहिये, पर स्वार्थीपन भी ज़रा बुद्धिमानीके साथ हो, तो अच्छा होता है। आप लोगोंको मि० ब्राइटकी यह बात सदा याद रखनी चाहिये, कि आपकी भलाई तभी होगी, जब भारतका भी भला किया जायेगा। इसलिये आप भारतको सुखी बनानेके लिये कमर कसकर उठ खड़े हूजिये—फिरतो आपका भी सुख-सौभाग्य दिन-दिन बढ़ता चला जायेगा। मैकालेने ठीकही कहा था,—

"यह हमारे लिये बड़ी मूर्खता की बात होगी, यदि हम करोड़ों भारतीयोंको गुलाम बनाये रखनेकी धुनमें अपने मालके करोड़ों पक्के खरीदार खो दें।"

बेचारे भारतीयोंको अपनेही देशके शासन-व्ययमें एक पाई इधर-उधर करनेका अधिकार नहीं है। भारतीय गवर्नमेण्ट जो चाहे कर सकती है। इण्डिया-काउन्सिल है सही, पर जैसा कुछ भी बजट आगे रखा जाता है, वह पास होही जाता है। काउन्सिलमें जो देशके प्रतिनिधि जाते हैं, वे थोड़ी बहुत वक्तृता झाड़नेके सिवा और कुछ नहीं कर सकते। अब हिन्दुस्तानके लोग इंग्लैण्डका मुँह जोहते हैं और अपने दावेको न्यायका दावा समझकर उनसे कहते हैं, कि वे जो वहाँसे

लाभ उठा रहे हैं, उसका विचार कर वहांका खर्च कुछ अपने सिर भी ले लें।

भारतीय सिविल-सर्विस।*

—०—

पहले मेरी इच्छा न थी, कि मैं भी यहां कुछ बोलनेके लिये सभापति महोदयसे प्रार्थना करूं; पर यहां आकर जब मैंने इस निबन्धका पाठ सुना और इसमें कुछ आपत्ति-जनक अंश पाया, तब बिना बोले रहा न गया। इस निबन्धका तृतीय भागही आपत्तिपूर्ण है और मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि ऊपर बड़े अच्छे विचारपूर्ण वक्तव्य प्रकट कर अन्तमें यह लंगड़ा निष्कर्ष निकाला गया है। मुझे सिर्फ १० मिनटका समय दिया गया है। अतएव इस तीसरे भागकी तमाम लचर दलीलोंका जवाब देना मेरे लिये मुश्किल है; पर मुझे सन्तोष इस बातका है, कि इस संस्थाके मुख-पत्रके भिन्न-भिन्न अङ्कोंमें मैं अपने जो विचार प्रकट कर चुका हूँ, वे सब किसीको मालूम हैं। साथही मैं मि० कोनेल और अन्यान्य सज्जनोंका ध्यान उन दोनों निबन्धोंकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ, जो सम्भवतः अगस्त और

* यह वक्तृता मि० जान ब्राइटकी अध्यक्षतामें ईस्ट-इन्डिया-ऐसोसियेशनकी एक मीटिंगमें १८२७के जुलाई महीनेमें दी गयी थी, जिसमें मि० ए० के० कोनेलने "इण्डियन सिविल-सर्विस"के विषयमें एक लेख पढ़ा था।

सितम्बरके ही Contemporary Review नामक पत्रमें प्रकाशित होनेवाले हैं। मि० कोनेलने जो गलत फ़हमी फैलानी चाही है, वह मैं उन निबन्धोंके लिखते ही समझ गया था और उस पर मैंने खूब विचार किया है। इसी लिये मैं इस समूचे निबन्धका उत्तर देनेका असम्भव प्रयत्न न करूंगा; बल्कि कुछ औरही तरहकी बातें सुनाऊँगा, जो कि हमारे सम्मुख उपस्थित रहनेवाले एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नसे सम्बन्ध रखती हैं। यह नौकरियोंवाला प्रश्न कुछ थोड़ेसे पढ़े-लिखे लोगोंके उच्चाभिलाषसे ही सम्बन्ध नहीं रखता; बल्कि यह सारे बृटिश-भारतके जीवन-मरणका सवाल है। यह हम लोगोंका परम सौभाग्य है, कि आज हमारी सभाके अध्यक्ष वेही सज्जन हैं, जिन्होंने आजसे एक तिहाई सदी पहले सन् १८५३ में इस सारी बुराईकी जड़के बारेमें बड़ाही अच्छा प्रश्न उपस्थित किया था। मिस्टर ब्राइटने उस समय कहा था,—"मैं यह अवश्य कह देना चाहता हूं, कि यह मेरा पूर्ण विश्वास है, कि यदि कोई देश खूब ही उपजाऊ हो और वहां हर तरहकी चीज़ें पैदा होती हों और इतने पर भी वहाँके लोग दुःख-दारिद्र्य भोग कर रहे हों, तो यह मानना पड़ेगा, कि वहाँकी शासन-पद्धतिके मूलमेंही कोई दोष घुस गया है।"

सज्जनों! जबतक आप लोग उनकी इस बातका सीधा-

साधा और सम्पूर्ण उत्तर नहीं देते, तबतक आप इस महत्वपूर्ण उपयोगी प्रश्न पर विचार ही नहीं कर सकते। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, यह सवाल केवल कुछ थोड़ेसे शिक्षित पुरुषोंका ही नहीं है। इस दरिद्रताके विषयमें आजसे सौ वर्ष पहले सर जान शॉ ने (Sir John Shaw) ने भी विचार किया था। लार्ड लारेन्सने अपने समयमें लिखा था, कि अधिकांश जनता आधा पेट खाकर ही रह जाती है। अभी हालमें भूतपूर्व अर्थ-मन्त्री सर इवलिन बारिङ्गने (Sir Evalin-Baring) भी प्रजाकी घोर दरिद्रताको स्वीकार किया था और वर्त्तमान मन्त्रीने भी ऐसा ही किया है। बात यह है, कि संसार भरमें सबसे अधिक प्रशंसा और वेतनवाले शासकों द्वारा भारतका शासन कराने पर भी आपलोग भारतकी अवस्था न सुधार सके—वह इस समय विश्वभरमें सबसे अधिक दरिद्र देश है। इसके लिये आप क्या जवाब अपने पास रखते हैं? इस प्रश्न पर ज़रा गौर करके विचार करिये, तभी आपको मालूम होगा, कि नौकरियोंके इस सवालमें कितनी बड़ी गम्भीर समस्या छिपी हुई है। अब मैं उन प्रतिज्ञाओंकी बात करता हूँ, जो हमारे साथ की गयी हैं। १८३३ में राजनीतिक पुरुषोंने इस प्रश्न पर खूब गहरा विचार किया, कि क्या कभी भारतको हाथसे जाने दिया जा सकता है? उन लोगोंने हर बातको

अच्छी तरह जाँचा-तौला था और जिस सिद्धान्त पर पहुंचे, वह उस सालके क़ानूनसे साफ़ झलक जाता है। किन्तु उस समय सचमुच भारतके हाथसे निकल जानेका कोई भय सामने नहीं आया था। इसके २५ वर्ष बाद वह भयदायक समय आया—आप लोगोंके विरुद्ध विद्रोहकी आग भड़क उठी। उस समय आपलोगोंने क्या किया था, याद है? बुरी तरह सताये जाने पर भी आपलोगोंने अपनी मर्यादा नहीं खोई। न्याय, उदारता और अपनी महारानीके मुंहसे वह बातें कहलवायीं, कि उन्हें यदि आप पूरा करदें, तो संसारमें आपको सर्वोच्च सम्मान, यश और कीर्ति प्राप्त हो।

सज्जनों! मूल विषयको समझनेकी चेष्टा कीजिये—इधर-उधर न हूजिये। यदि आपको भारतके हाथसे निकल जानेका भय हो और आपके जीमें यह भय भरा हुआ हो, तो आप इसे स्पष्ट हम-से कह दें। कह दीजिये, कि हम लोग तुम्हें अपने पैरोंकी जूती बनाकर रखेंगे, पनपने या ऊंचे बढ़ने न देंगे। फिर तो हमें अपने भाग्यका लिखा साफ़ ही मालूम हो जायेगा, कोई सन्देह या आशा लगी हुई न रहेगी। परन्तु यदि आपमें अंगरेज़ोंकी स्वाभाविक मरदानगी मौजूद हो, तो सच-सच कह डालिये, कि आपका इरादा क्या है? लगी-लिपटी बातें कहनेका कोई काम नहीं, हम साफ़ बातें सुनना चाहते हैं। सच कहियें,

क्या आप उन प्रतिज्ञाओंको पूरा करना चाहते हैं, जो आपने ईश्वरकी प्रेरणासे, ईश्वरका नाम लेकर और उनकी पूर्तिके लिये ईश्वरसे सहायताकी प्रार्थना करते हुए, की थीं ? क्या सचमुच आप अभी तक अपनी प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ हैं ? जो कुछ इरादा हो, उसे सच्चे अँगरेज़की तरह स्पष्ट कह डालिये। कहिये, आप क्या करेंगे और क्या नहीं करेंगे ? परन्तु अपने ऊपर यह अपराध न लगने दीजिये, कि आप केवल सुनानेके लिये प्रतिज्ञा करते हैं, आशा पूरी करनेके लिये नहीं। यह अपराध मैं आप लोगों पर नहीं लगाता, बल्कि आपहीकी इण्डिया-काउन्सिलके मेम्बर लगा रहे हैं।

समयको देख कर मैं इस निबन्धके द्वारा पैदा होनेवाले भिन्न-भिन्न प्रश्नों पर विचार करना नहीं चाहता, बल्कि केवल मात्र यही पूछना चाहता हूँ, कि क्या आप सच्चे अँगरेज़की तरह जो कहते हैं, उसे करनेको तैयार हैं ? यदि आप उन प्रतिज्ञाओंको पूरा करना चाहते हैं, तो ईमानदारीके साथ पूरा कीजिये और नहीं तो साफ़-साफ़ कह दीजिये। इसीसे आपके जातीय गुण-ईमानदारी और मरदानगीका परिचय प्राप्त होगा।

मि० कौनेलने अपने निबन्धके प्रथम भागमें अँगरेज़-जातिके सिद्धान्तोंका बड़े जोरदार शब्दोंमें वर्णन किया है और यह दिखलाया है, कि इन सिद्धान्तोंके अनुसार कार्य करनेके लि

हम लोग बाध्य हैं; परन्तु तीसरे भागमें तो आपने सब कहे-सुने पर पानीही फेर दिया है—यहाँ आकर आपने उन सिद्धान्तोंके ही विरुद्ध आचरण करनेका रास्तासा दिखा दिया है। परन्तु वे एक बात भूलते हैं। जो प्रतिज्ञा अंगरेज़-जातिने की है, उसके अनुसार आचरण करनेकी उसने कभी चेष्टा नहीं की। अगर चेष्टाकी जाती, तो इससे आपलोगोंकी कीर्त्ति सदाके लिये स्थायी हो जाती और साथही आपलोगोंको बहुतसे लाभभी होते। अगर भारतको सुखके साथ आपलोगोंके शासनके अधीन रहना है, तो यह सुफल केवल हमारे साथकी हुई प्रतिज्ञाका पालन करनेसेही प्राप्त हो सकता है। सज्जनो! स्थायी और व्यापक फल तो कुछ करनेसे ही प्राप्त हो सकते हैं; केवल झूठी बातें बनाने या कामके वक्त बगले झाँकनेसे नहीं। सुनिश्चित सिद्धान्तोंपर सुदृढ़ रहनेसे ही सुफल उत्पन्न हो सकते हैं। भारतपर आपका शासन लाख-पचास हज़ार सङ्गीनोंके बलपर क़ायम नहीं है; बल्कि इसका आधार वही श्रद्धा और विश्वास है, जो मेरे दिलमें अंगरेज़ोंके मान और धर्म भय पर हैं। जबतक मेरे दिलमें यह विश्वास बना हुआ है, तबतक मैं मिस्टर ब्राइटके से राजनीतिज्ञों और अंगरेज़-जातिके सम्मुख प्रार्थना और युक्ति-तर्क उपस्थित करता रहूंगा। ईश्वर को सामने रखकर अपने किये हुए वचन पूरे करो; कारण इसी

तरहके सत्य-सनातन सिद्धान्तोंका अनुगमन करनेसे आपका शासन स्थायी और उभय पक्षोंके लिये लाभदायक होगा। अब सभापतिके पूर्वोल्लिखित प्रश्नका उत्तर यह है :—विदेशी शासन, चाहे वे विदेशी स्वर्गके देवताही क्यों न हों, पृथ्वीपर बसनेवाली किसी जातिके लिये शापके ही समान दुःखदायी होता है—हां, यदि वह कुछ-कुछ स्वदेशी-शासनका मुकाबिला कर सके, तो थोड़ा बहुत प्रिय हो सकता है। यदि इस सिद्धान्त को दिलमें जगह न दी गयी और आपने अपने वचन पूर्ण करनेकी ईमानदारी के साथ चेष्टा नहीं की, तो हमारा कुछ कहना-सुनना भी बेकार ही है और इससे कोई अच्छा फल होनेकी आशा करना मूर्खता है। इसका एकही परिणाम होगा और वह यह, कि भारत कभी भौतिक एवं नैतिक उत्कर्ष नहीं प्राप्त कर सकेगा। आज इन सर्विसोंमें (नौकरियोंमें) जो लोग काम कर रहे हैं, उनके व्यक्तित्वके विषयमें मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता। वे बेचारे जिस भूलभुलैयामें रख छोड़े गये हैं, उसके अनुसार अच्छा काम कर रहे हैं और जिस योग्यता और साधुताके साथ वे काम करते हैं, उसके लिये उनका हर प्रकार से सम्मान करना चाहिये। मेरा वक्तव्य कुछ और ही है। मेरा कहना यह है, कि वर्त्तमान शासन-नीति पलट देनी चाहिये। ऊपरसे अंगरेज़-जातिका नियन्त्रण भलेही रहे, पर शासनका प्रत्येक

विभाग देशी लोगोंसे भर देना चाहिये। इससे आपको एक ऐसा नुसखा हाथ लग जायेगा, जिससे आपका राज्य भारतमें स्थायी हो जायेगा; क्योंकि इससे आपका प्रजा सन्तुष्ट होगी, कारण, तब आप उसे उसकी प्राच्य और अपनी प्रतिज्ञात वस्तु दानकर उदारता और न्यायप्रियता का परिचय देंगे। आपका राज्य वहाँ न्यायशीलता परही अवलम्बित है। यदि आपसे लोग सन्तुष्ट रहेंगे, तो जो परिणाम होगा, वह यह होगा :—यह हिन्दुस्तानकी एक ख़ास बात है, कि वहाँ हिन्दू और मुसलमान दो बड़ी जातियाँ रहती हैं। यदि दोनों आपसे सन्तुष्ट होंगी, तो दोनोंही चाहेंगी, कि आपका राज्य उनके ऊपर स्थायी रहे, पर यदि वे आपसे असन्तुष्ट हुईं, तो आपसमें मेलकर आपके ख़िलाफ़ उठ खड़ी होंगी। आजकलका जैसा हाल है, उससे सब कुछ आपकेही अनुकूल है। सच पूछो, तो यह एक दैवी नियम है, कि यदि आप दैवी नियमोंका पालन करते जायें, तो आपको अलौकिक लाभ भी प्राप्त होंगे। परिणाम चाहे जो कुछ हो; पर भलाई करनाही मनुष्यके लिये उचित और कर्त्तव्य है। अगर आप दैवी अर्थात प्राकृतिक नियमोंकी उपेक्षा करेंगे, तो यह अवश्य-म्भावी है, कि उसका अशुभ फल हो। अब समय हो गया, अतएव मैं चुप हो जाना चाहता हूं।

वृटिश-शासनमें भारत। ❀

जिस उदारताके साथ आपलोगोंने मेरी स्वास्थ्य-कामनाकी है और जैसा वाञ्छनीय स्वागत आपलोगोंने मेरा किया है, उसके लिये मैं आपलोगोंको किन शब्दोंमें धन्यवाद दूँ,-यह मेरी समझमें नहीं आता। इसका मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

यदि आप पूछें, कि वृटिश-शासनके प्रति मेरे क्या भाव हैं, तो मैं यह कह देना चाहता हूं, कि मेरे विचारोंके असली तत्त्वको अभीतक लोगोंने समझा ही नहीं है। मेरे कहनेका मतलब यह है, कि वृटिश-प्रजाने भारतसे बड़ा लाभ उठाया है ; पर यदि वहाँका शासन पार्लामेन्टके बनाये हुए क़ानूनके मुताबिक़ किया जाता, तो यह लाभ और भी कई गुना अधिक होता। यह हमारे और इँग्लैण्ड दोनोंहीके लिये दुःखकी बात है, कि उस नीतिसे कभी काम न लिया गया, जो पार्लामेन्टके क़ानूनमें सम्बद्ध थी ; बल्कि आजतक सरकार पुरानेही ज़मानेकी तरह स्वार्थपरताकी नीतिही अवलम्बन किये हुए है। जब मैं इसकी निन्दा करता हूं, तब मुझसे यही कहा जाता है, कि वृटेनका भारतके साथ सम्बन्ध बना रहना भारतकी ही भलाईके

❀लण्डन इण्डियन सोसाइटीमें २२ वीं मार्च १९०२ को दी हुई वक्तृता।

विभाग देशी लोगोंसे भर देना चाहिये। इससे आपको एक ऐसा नुसखा हाथ लग जायेगा, जिससे आपका राज्य भारतमें स्थायी हो जायेगा; क्योंकि इससे आपका प्रजा सन्तुष्ट होगी, कारण, तब आप उसे उसकी प्राच्य और अपनी प्रतिज्ञात वस्तु दानकर उदारता और न्यायप्रियता का परिचय देंगे। आपका राज्य वहाँ न्यायशीलता परही अवलम्बित है। यदि आपसे लोग सन्तुष्ट रहेंगे, तो जो परिणाम होगा, वह यह होगा :—यह हिन्दुस्तानकी एक ख़ास बात है, कि वहाँ हिन्दू और मुसलमान दो बड़ी जातियाँ रहती हैं। यदि दोनों आपसे सन्तुष्ट होंगी, तो दोनोंही चाहेंगी, कि आपका राज्य उनके ऊपर स्थायी रहे, पर यदि वे आपसे असन्तुष्ट हुईं, तो आपसमें मेलकर आपके ख़िलाफ़ उठ खड़ी होंगी। आजकलका जैसा हाल है, उससे सब कुछ आपकेही अनुकूल है। सच पूछो, तो यह एक दैवी नियम है, कि यदि आप दैवी नियमोंका पालन करते जायें, तो आपको अलौकिक लाभ भी प्राप्त होंगे। परिणाम चाहे जो कुछ हो; पर भलाई करनाही मनुष्यके लिये उचित और कर्त्तव्य है। अगर आप दैवी अर्थात प्राकृतिक नियमोंकी उपेक्षा करेंगे, तो यह अवश्यम्भावी है, कि उसका अशुभ फल हो। अब समय हो गया, अतएव मैं चुप हो जाना चाहता हूं।

वृटिश-शासनमें भारत। ⊛

जिस उदारताके साथ आपलोगोंने मेरी स्वास्थ्य-कामनाकी है और जैसा वाञ्छनीय स्वागत आपलोगोंने मेरा किया है, उसके लिये मैं आपलोगोंको किन शब्दोंमें धन्यवाद दूँ,-यह मेरी समझमें नहीं आता। इसका मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

यदि आप पूछें, कि वृटिश-शासनके प्रति मेरे क्या भाव हैं, तो मैं यह कह देना चाहता हूं, कि मेरे विचारोंके असली तत्त्वको अभीतक लोगोंने समझा ही नहीं है। मेरे कहनेका मतलब यह है, कि वृटिश-प्रजाने भारतसे बड़ा लाभ उठाया है; पर यदि वहाँका शासन पार्लामेन्टके बनाये हुए क़ानूनके मुताबिक़ किया जाता, तो वह लाभ और भी कई गुना अधिक होता। यह हमारे और इँगलैण्ड दोनोंहीके लिये दुःखकी बात है, कि उस नीतिसे कभी काम न लिया गया, जो पार्लामेन्टके क़ानूनमें सम्बद्ध थी; बल्कि आजतक सरकार पुरानेही ज़मानेकी तरह स्वार्थपरताकी नीतिही अवलम्बन किये हुए है। जब मैं इसकी निन्दा करता हूं, तब मुझसे यही कहा जाता है, कि वृटेनका भारतके साथ सम्बन्ध बना रहना भारतकी ही भलाईके

⊛लण्डन इण्डियन सोसाइटीमें २२ वीं मार्च १९०२ को दी हुई वक्तृता।

लिये है। मैं कब इस बातसे इनकार करता हूं? पर हां चाहता यह हूं, कि यह सम्बन्ध उदारता और न्यायके आधा पर स्थापित हो। भारतीय राष्ट्रने जो अपनी राष्ट्रीय महा सभा स्थापित कर दी है, उससे यह साबित हो गया, वि बृटिश-शासन भारतके लिये और भी लाभदायक बनाया ज सकता है और मेरा यह विश्वास है कि यदि आप लोग इस आन्दोलनको उचित मार्गसे हट जानेके लिये मजबूर करेंगे, तो किसी दिन अँगरेजी हुकूमतके साथ इसकी बड़ी भारी टक्कर होगी।*

इस बातको समझनेके लिये बहुत गहरे विचारकी आवश्यकता नहीं है। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञोंने इस बातको स्वीकार किया है, कि भारतकी भलाई इसीपर निर्भर है, कि यहाँके लोग सन्तुष्ट रहें; पर यह सन्तोष तभी हो सकता है, जब कि यहाँकी प्रजा यह समझे, कि बृटिश-शासनसे उसका हित हो रहा है, उसकी राजनीतिक स्थिति उन्नत हो रही है और उसके सुख-सौभाग्यकी वृद्धि हो रही है। परन्तु बात ठीक इसके विपरीत है और इसे अस्वीकार करना व्यर्थ है, कि जो शासन-नीति यहाँ प्रचलित है, वह एकदम मूर्खता-पूर्ण है। इसने

* "वृथा न जाहिं देव ऋषि वानी।" वर्त्तमान समयमें कांग्रेसके साथ अँगरेज़ी शासनकी खासी टक्कर हो रही है। लेखक—

न तो भारतीयोंकी राजनीतिक स्थिति सुधारी, न उन्हें सुख-सौभाग्यशाली बनाया। यदि आप उसे सचमुच साम्राज्यवादी और वृटिश-शासनका अनुरागी बना सकें, तो मैं यह सच कहता हूं, कि दर्जनों रूस उसकी भूमिमें पैर नहीं रख सकते और न वृटिश-साम्राज्यका कुछ अहित कर सकते हैं। मिस्टर केनने भारतीय सैन्यके दक्षिण अफ्रिकामें नहीं भेजे जानेपर बड़ा दुःख प्रकट किया है। ठीकही है; क्योंकि आप एक बहुत बड़े साम्राज्यकी रक्षा तबतक नहीं कर सकते, जबतक आप उसके प्रत्येक अंगका बल उपयोगमें न लायें। वृटिश-साम्राज्यके लिये भारतमें हृष्ट-पुष्ट, बुद्धिमान और योग्य मनुष्यों-की कमी नहीं है। आप एक बार आवाज, ऊँची करतेही दस-पाँच लाख सिपाही अपने साम्राज्यकी रक्षाके अर्थ प्राप्त कर सकते हैं। हम लोग सिर्फ़ यही चाहते हैं, कि हम भी साम्राज्यके अंग समझे जायें, नकि ख़रीदे हुए गुलाम। दोनों देशोंके हितके लिहाजसे हम कहते हैं, कि आप उन्हीं पद्धतियोंके अनुसार अपनी नीति निर्द्धारित करें, जिन पद्धतियोंका निर्देश पार्लामेन्टके क़ानूनमें है, महारानीकी घोषणामें है और वर्त्तमान सम्राट्‌ने भी जिनपर स्वीकृतिकी मुहर देदी है। भारतके प्रति यही नीति सबसे अच्छी और सच्ची होगी। यदि इस नीतिका अवलम्बन न

लिये है। मैं कब इस बातसे इनकार करता हूं ? पर हाँ, चाहता यह हूं, कि यह सम्बन्ध उदारता और न्यायके आधार पर स्थापित हो। भारतीय राष्ट्रने जो अपनी राष्ट्रीय महासभा स्थापित कर दी है, उससे यह साबित हो गया, कि वृटिश-शासन भारतके लिये और भी लाभदायक बनाया जा सकता है और मेरा यह विश्वास है कि यदि आप लोग इस आन्दोलनको उचित मार्गसे हट जानेके लिये मजबूर करेंगे, तो किसी दिन अँगरेजी हुकूमतके साथ इसकी बड़ी भारी टक्कर होगी।*

इस बातको समझनेके लिये बहुत गहरे विचारकी आवश्यकता नहीं है। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञोंने इस बातको स्वीकार किया है, कि भारतकी भलाई इसीपर निर्भर है, कि वहाँके लोग सन्तुष्ट रहें ; पर यह सन्तोष तभी हो सकता है, जब कि वहाँकी प्रजा यह समझे, कि वृटिश-शासनसे उसका हित हो रहा है, उसकी राजनीतिक स्थिति उन्नत हो रही है और उसके सुख-सौभाग्यकी वृद्धि हो रही है। परन्तु बात ठीक इसके विपरीत है और इसे अस्वीकार करना व्यर्थ है, कि जो शासन-नीति वहाँ प्रचलित है, वह एकदम मूर्खता-पूर्ण है। इसने

* "वृथा न जाहिं देव ऋषि बानी।" वर्त्तमान समयमें कांग्रेसके साथ अँगरेजी शासनकी खासी टक्कर हो रही है। लेखक—

न तो भारतीयोंकी राजनीतिक स्थिति सुधारी, न उन्हें सुख-सौभाग्यशाली बनाया। यदि आप उसे सचमुच साम्राज्यवादी और वृटिश-शासनका अनुरागी बना सकें, तो मैं यह सच कहता हूं, कि दर्जनों रूस उसकी भूमिमें पैर नहीं रख सकते और न वृटिश-साम्राज्यका कुछ अहित कर सकते हैं। मिस्टर केनने भारतीय सैन्यके दक्षिण अफ्रिकामें नहीं भेजे जानेपर बड़ा दुःख प्रकट किया है। ठीकही है; क्योंकि आप एक बहुत बड़े साम्राज्यकी रक्षा तबतक नहीं कर सकते, जबतक आप उसके प्रत्येक अंगका बल उपयोगमें न लायें। वृटिश-साम्राज्यके लिये भारतमें हृष्ट-पुष्ट, बुद्धिमान और योग्य मनुष्यों-की कमी नहीं है। आप एक बार आवाज़ उंची करतेही दस-पाँच लाख सिपाही अपने साम्राज्यकी रक्षार्थ प्राप्त कर सकते हैं। हम लोग सिर्फ़ यही चाहते हैं, कि हम भी साम्राज्यके अंग समझे जायें, नकि ख़रीदे हुए गुलाम। दोनों देशोंके हितके लिहाज़से हम चाहते हैं, कि आप उन्हीं पद्धतियोंके अनुसार अपनी नीति निर्धारित करें, जिन पद्धतियोंका निर्देश पार्लामेन्टके क़ानूनमें है, महारानीकी घोषणामें है और वर्त्तमान सम्राट्ने भी जिनपर स्वीकृतिकी मुहर देदी है। भारतके प्रति यही नीति सबसे अच्छी और सच्ची होगी। यदि इस नीतिका अवलम्ब

किया गया, तो भविष्य वैसा आशाजनक नहीं है। मैं अपनी बात कहता हूँ, कि मुझे अँगरेज़ोंकी नेकनीयतीपर विश्वास रहता है। सन १८५३में ही, जब पहले-पहल भारतमें राजनीतिक आन्दोलनकी सृष्टि हुई थी और बम्बई, कलकत्ते और मद्रासमें पार्लामेण्टके पास सुधारके निमित्त प्रार्थना करनेके लिये संस्थाएँ स्थापित की गयी थीं, तभी मैंने अँगरेज़ी प्रजापर अपना दृढ़ विश्वास प्रकट किया था। मैंने उसी समय कह दिया था, कि अगर बृटिश जनताको भारतकी स्थिति का सच्चा-सच्चा विवरण मिलता रहे, तो वह भारतके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन अवश्य करे। गत पचास वर्षोंमें अनेक उलट-फेरों और निराशाओंके होते हुए भी मेरा वह विश्वास अभीतक ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। यदि हमलोग बृटिश जनताको उसका कर्त्तव्य बतला सकें, तो मैं जहाँतक विश्वास करता हूँ, इंगलैण्डको ऐसा साम्राज्य प्राप्त हो जायेगा, जिसका जोड़ा कभी संसारमें पैदा न हुआ होगा और जिसपर कोई भी जाति सहर्ष गर्व कर सकती है। सच पूछो, तो भारतही बृटिश-साम्राज्य है। उपनिवेश तो वैसेही पुत्रोंके समान हैं, जो घरसे अलग होकर इधर-उधर जा बसते हैं, पर दिल-ही-दिलमें मातृ-भूमिके लिये बड़ा प्रेम रखते हैं; परन्तु भारत-साम्राज्य तो एक ऐसी चीज है, कि यदि उसे ठीक-ठिकानेसे

चलाया जाये, तो अद्भुत सफलता दिखाई पड़े। हमलोग केवल यही चाहते हैं, कि दोनों देशोंमें सच्ची भक्ति और यथार्थ सम्बन्ध स्थापित हो। नवयुवकों! आपलोगोंको अपने चारों तरफ़ बैठा देखकर मेरा हृदय प्रसन्न हो जाता है। वृद्ध लोग तो धीरे-धीरे चलेही जा रहे हैं—मेरा भी किसी दिन नम्बर आयाही चाहता है। इस आन्दोलनके बारेमें हमलोगोंसे जो कुछ करते बन पड़ा, वह हम कर चुके। हमने घोर अन्धकारमें टटोलेते हुए काम शुरू किया; पर अब हम आप लोगोंके लिये गत पचास वर्षोंके परिश्रमसे उत्पन्न हुआ अनुभव छोड़े जा रहे हैं, आप लोग उससे लाभ उठायें और इस समस्याका भली भाँति अध्ययन करें। यदि आपलोग इँगलैण्डवालोंके मध्यमें बृटिश-शासनके यथार्थ गुण-दोषोंका ज्ञान फैला सकें, तो समझना होगा, कि आपने इंगलैण्ड और भारत दोनोंहीके हितका एक बहुत बड़ा काम कर डाला। मुझे इस बातकी ख़ुशी है, कि मैंने इस कार्यके लिये अपनी शक्तिभर उद्योग किया। मेरा यह विचार तो अभीतक बना हुआ है, कि बृटिश-शासनके वर्त्तमान रहनेमें ही भारतकी भलाई है। परन्तु यह शासन वैसा न हो, जैसा कि पहलेसे रहता चला आया है। आप हमारे यहाँ ऐसा शासन प्रचलित करें, जिसमें हम आप भाई-भाई समझे जायें, न कि मालिक और गुलाम। (उच्च करतल ध्वनि)।

किया गया, तो भविष्य वैसा आशाजनक नहीं है। मैं अपनी बात कहता हूँ, कि मुझे अँगरेज़ोंकी नेकनीयतीपर विश्वास रहता है। सन १८५३में ही, जब पहले-पहल भारतमें राजनीतिक आन्दोलनकी सृष्टि हुई थी और बम्बई, कलकत्ते और मद्रासमें पार्लामेण्टके पास सुधारके निमित्त प्रार्थना करनेके लिये संस्थाएँ स्थापित की गयी थीं, तभी मैंने अँगरेज़ी प्रजापर अपना दृढ़ विश्वास प्रकट किया था। मैंने उसी समय कह दिया था, कि अगर बृटिश जनताको भारतकी स्थिति का सच्चा-सच्चा विवरण मिलता रहे, तो वह भारतके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन अवश्य करे। गत पचास वर्षों में अनेक उलट-फेरों और निराशाओंके होते हुए भी मेरा वह विश्वास अभीतक ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। यदि हमलोग बृटिश जनताको उसका कर्त्तव्य बतला सकें, तो मैं जहाँतक विश्वास करता हूँ, इंगलैण्डको ऐसा साम्राज्य प्राप्त हो जायेगा, जिसका जोड़ा कभी संसारमें पैदा न हुआ होगा और जिसपर कोई भी जाति सहर्ष गर्व कर सकती है। सच पूछो, तो भारतही बृटिश-साम्राज्य है। उपनिवेश तो वैसेही पुत्रोंके समान हैं, जो घरसे अलग होकर इधर-उधर जा बसते हैं, पर दिल-ही-दिलमें मातृ-भूमिके लिये बड़ा प्रेम रखते हैं; परन्तु भारत-साम्राज्य तो एक ऐसी चीज है, कि यदि उसे ठीक-ठिकानेसे

चलाया जाये, तो बहुत सफलता दिखाई पड़े। हमलोग केवल यही चाहते हैं, कि दोनों देशोंमें सच्ची भक्ति और यथार्थ सम्बन्ध स्थापित हो। नवयुवकों! आपलोगोंको अपने चारों तरफ़ बैठा देखकर मेरा हृदय प्रसन्न हो जाता है। वृद्ध लोग तो धीरे-धीरे चलेही जा रहे हैं—मेरा भी किसी दिन नम्बर आयाही चाहता है। इस आन्दोलनके बारेमें हमलोगोंसे जो कुछ करते बन पड़ा, यह हम कर चुके। हमने घोर अन्धकारमें टटोलेते हुए काम शुरू किया; पर अब हम आप लोगोंके लिये गत पचास वर्षोंके परिश्रमसे उत्पन्न हुआ अनुभव छोड़े जा रहे हैं, आप लोग उससे लाभ उठायें और इस समस्याका भली भाँति अध्ययन करें। यदि आपलोग इँग्लैण्डवालोंके मध्यमें वृटिश-शासनके यथार्थ गुण-दोषोंका ज्ञान फैला सकें, तो समझना होगा, कि आपने इँग्लैण्ड और भारत दोनोंहीके हितका एक बहुत बड़ा काम कर डाला। मुझे इस बातकी खुशी है, कि मैंने इस कार्यके लिये अपनी शक्तिभर उद्योग किया। मेरा यह विचार तो अभीतक बना हुआ है, कि वृटिश-शासनके वर्त्तमान रहनेमें ही भारतकी भलाई है। परन्तु यह शासन वैसा न हो, जैसा कि पहलेसे रहता चला आया है। आप हमारे यहाँ ऐसा शासन प्रचलित करें, जिसमें हम आप भाई-भाई समझे जायें, न कि मालिक और गुलाम। (उच्च करतल ध्वनि)।

लेख

१—असन्तोषके कारण।⊛

भारतके साथ अंगरेज़ोंका सम्बन्ध होनेसे हमारी जो भलाई हुई है, उसका मुझसे बढ़कर शायद ही कोई अनुभव करता होगा। खासकर शिक्षाका जो प्रचार इस शासनके द्वारा हुआ है, उससे अँगरेज़ोंकी सी राजनीतिक प्रगतिकी आकांक्षा, उन्हींकी तरह कानून और व्यवस्थाकी कामना, बोलने और सभाएँ करनेकी स्वतन्त्रताकी अभिलाषा और महत्त्वपूर्ण सामाजिक सुधार करनेकी लालसा हममें उत्पन्न हुई है। इससे इंग्लैण्डका बड़प्पन टपकता है और हम इसके लिये उसे हृदयसे धन्यवाद देते हैं। बृटेनने हमारा जो यथार्थ उपकार किया है, उसको मैं कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे स्वीकार करनेके लिये तैयार हूं।

परन्तु किसी विषयके दोनों पहलू देखने होते हैं। जहां हम उनकी की हुई भलाइयोंकी चर्चा करते हैं, वहाँ न्यायतः हमें दूसरी ओर देखनेकी भी आवश्यकता है। इस कमीशनका

⊛ यह निबंध जीवनीमें वर्णित वेल्बी-कमिशनके सम्मुख ३१वीं जनवरी १८९७को उपस्थित किया गया था।

उद्देश्य भी शासन-नीति और शासन-व्ययके प्रबन्ध तथा विभाजनपर विचार करना ही है।

यह बात सदा ध्यानमें रखनी होगी, कि जहाँ शिक्षाके प्रचार तथा कानून और व्यवस्थाकी स्थापनासे भारतीयोंका भला हुआ है, वहाँ इससे अँगरेजी सलतनतको ही अधिक लाभ हुआ है। हाँ, मजेकी बात यही है, कि लाभ तो हुआ भारत और इंग्लैण्ड, दोनोंको ही; परन्तु खर्च सारा हिन्दुस्तानियोंके ही सिर मढ़ दिया गया।

भारतमें अँगरेज़ोंका जो साम्राज्य स्थापित हुआ है, वह भारतीयोंके ही धन और रक्त-दानसे स्थापित हुआ है। इसके अतिरिक्त लाखों-करोड़ों रुपये ये अंगरेज़ यहाँसे ढो-ढोकर वहाँ लाया करते हैं, जिससे इंग्लैण्ड सारे संसारमें सबसे बड़ा, सबसे धनी और सबसे कीर्त्तिशाली हो गया। उसको यहाँतक भौतिक उन्नति हुई, कि यद्यपि कृषिका सत्यानाश होता जा रहा है, तथापि वहाँके चान्सेलर आफ़ दी एक्सचेकर (प्रधान-कोषाध्यक्ष) इसी बातपर खुश हो रहे हैं, कि उनका भण्डार दिन-दिन भरता जा रहा है। पर यहाँ ब्रिटिश इण्डिया तो घोर दरिद्रता और दासताके दल-दलमें फंस गया है।

क्या इण्डिया-आफिस कृपा करके हमें उस अपार धन-

सम्पत्तिका हाल बतलायेगा, जो कि उसने गत डेढ़सौ वर्षमें भारतसे खींच ली है। उसका हिसाब देख आप हैरतमें आ जायेंगे। इण्डिया-आफ़िसमें तो सब हिसाब रहताही होगा।

खैर, मुझे जो आँकड़े मिल सके हैं, उन्हें मैं आप लोगोंके सामने पेश किये देता हूं। अंगरेजोंके अधिकृत भारतसे ५२६,७४०,००० पौण्डके मूल्यकी चीजें विलायत भेजी गयीं, जिनके बदलेमें उसे एक कौड़ीका भी माल न मिला। इस तरहकी हानिके अतिरिक्त उसे २,८५१,०००,००० पौण्डकी रफ्तनीके नफ़ेपर १० फ़ी सदीके हिसाबसे टैक्स वगैरह दे देना पड़ा, जिससे २८५,०००,००० पौण्ड बृटिशके हाथसे और भी निकल गये, जिनके बदलेमें उसे कुछभी न मिला। इसमें से उतना अंश घट जायेगा, जो देशी राज्योंका नफ़ा है। इसीमें भारतीय विदेशियों (अर्थात देशी राज्योंके पूँजी पतियोंके) नफ़ेको भी जोड़ लीजिये, क्योंकि आखिर, वे भी तो उतनी रक़म बृटिश भारतसे अपने अपने राज्योंमें ढो ले जाते हैं। इसके सिवा भाड़े और जहाजके बीमेके प्रिमियम का भी ख़याल करना होगा; क्योंकि चाहें माल रफ्तनी हो या आमदनी, उसके ये दोनों ख़र्च विलायतमेंही चुकाये जाते हैं। साधारणतया किसी को उस विदेशीसे शिकायत नहीं

हो सकती, जो ईमानदरीके साथ कमाये-खाये, परन्तु वृटिश-भारतमें तो ईमानदारी और बराबरीका नाम भी नहीं है।

सबसे पहली बात तो यह है, कि वृटिश-भारतमें जो निरङ्कुश शासन-प्रद्धति प्रचलित है, वह उसे एकदम दरिद्र, असहाय और पूंजी-हीन बनाये हुए है। वह उसे अपने यहाँकी उत्पन्न वस्तुओंको स्वयं व्यवहारमें नहीं लाने देती। इसपर विदेशी सौदागरोंने तो भारतवासियोंपर तबाही ढा दी है, जिससे यहांके लोग लकड़हारों और भिखारियोंकी दशाको पहुँच गये हैं। हिन्दुस्तानकी अपार उपजें इन विदेशियोंके ही हाथमें हैं।

ये विदेशी बनिये अपनी पूंजी लगाकर तो यहांके लोगोंको लूटते ही हैं, बहुत मर्त्तबः ऐसा भी होता हैं, कि जिन्हें ये लोग लूटते हैं, उन्हीं गरीबोंके टैक्सके पैसेसे ये उन्हें लूटनेकी मशीन तैयार करते हैं। हिन्दुस्तानियोंके दिये हुए टैक्सके पैसे अंगरेज व्यापारियोंको व्यापार करनेके लिये दिये जाते हैं, जिसका सारा नफ़ा वे अपने देशको ढो ले जाते हैं। बेचारे गरीब टैक्स देनेवालोंको न केवल एक अन्यायी शासनके ही लिये रुपया जुटाना पड़ता है; बल्कि उनलोगोंकी पूंजीका भी प्रबन्ध करना पड़ता है, जो उनकी मिहनतकी कमाई लूट लेना चाहते हैं।

इस कमीशनका काम शासन-व्यय और उसके अंश-विभाग का विचार करना है। मेरा यह पूर्ण विश्वास है और मेरे लेखों से यह भली भाँति प्रमाणित भी है, कि यदि शासन-प्रणाली और व्ययका प्रबन्ध तथा विभाग धर्म, साधुता, सम्मान और निस्स्वार्थताके आधारपर किया जाये, तो भारतकी राजनीतिक स्थिति में ऐसी कुछ विशेषताएँ हैं, जो दोनों देशोंमें बड़ा मेल जोल और पक्का सम्बन्ध स्थापित कर देंगी, जिससे न केवल वृटिश-भारतको ही लाभ होगा, बलिक वर्त्तमान समयमें इंग्लैण्डको ही अधिक लाभ होगा। इसीलिये मैं चाहता हूँ, कि यह सम्बन्ध स्थायी हो और भारत एवं वृटिश साम्राज्य—दोनोंका हित-चिन्तक होनेके कारण इस सम्बन्धके स्थायित्वके लिये अपना जीवनही अर्पण कर चुका हूं। इसीलिये मैं इसे अपना परम कर्त्तव्य करता हूँ, कि मैं आपके सामने उन कारणोंको स्पष्ट प्रकट कर दूं, जो इस सम्बन्धको बहुत कुछ कमज़ोर कर चुके हैं और दिन-दिन करतेही जाते हैं।

प्रथम—यह अनँगरेज़ी (Un-English) स्वेच्छाचारिता-पूर्ण, निरंकुश शासन-पद्धति, जिसके अधीन रहनेसे भारत-वासियोंको अपने देशके शासन-व्ययके प्रबन्धके बारेमें जरा मुँह खोलनेतकका अधिकार नहीं है। यह बात अँगरेज़ोंके चरित्रके विरुद्ध है, कि वे एक राजभक्त और व्यवस्थापालक प्रजाको

शासनके सम्बन्धमें बोल-चाल करनेका वह अधिकार देना अस्वीकार कर दें, जिसे वे स्वयं इतना प्रिय मानते हैं।

द्वितीय—भारतका वह अन्यायपूर्ण "रक्त-शोषण" जिसकी बदौलत हिन्दुस्तानके लोग इस प्रकार हद दर्जेकी दरिद्रताको पहुंच गये हैं, कि जहाँ एक साल फ़सल ख़राब हुई, कि लोग लाखोंकी तादादमें भूखों मरने लग जाते हैं और करोड़ोंको तो यह भी नहीं मालूम होता, कि भरपेट खाना कैसा होता है? भला किसी पूर्वीय देशका (अथवा रूसकाही सही) निरंकुश शासन इससे बढ़कर तबाही और क्या ला सकता है?

तृतीय—श्रीमती महारानीने या वृटिश-जातिने जो पवित्र प्रतिज्ञाएँ की थीं या उदारता-पूर्ण क़ानून बनाये थे, उन्हें न मानना या माननेसे जी चुराना। इससे भारतीय प्रजाका विश्वास वृटिश-राज्यकी न्यायशालितापरसे उठ गया है। संक्षेपतः, यह और ऐसीही अन्य भूलें, जो शासनमें की जाती हैं, वृटिश-भारतके निवासियोंकी सम्पत्ति, श्रम और बुद्धिका नाश कर रही हैं, जिससे वे घोर दरिद्र हो रहे हैं,—उन्हें अपनेही देशमें अच्छी नौकरियाँ नहीं मिलतीं, वे एकदम अधःपतित दशाको पहुंच गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है, कि उनके शरीरसे मनुष्यत्त्वही उठता जाता है।

अब आगे बढ़नेके पहले मैं एक बातका गड़बड़झाला मिटा

देना चाहता हूं । कोई कहता है, कि भारत सुखी है और कोई कहता है, कि वह तो दरिद्रताका सताया हुआ है । सच पूछिये, तो यह गोलमाल अवस्थाके अनुसार पैदा होता है । मैं जो कुछ कहूंगा, वह वृटिश-शासनाधीन भारतसे सम्बन्ध रखता है ।

सत्यतः देखा जाये, तो भारतवासियोंके दो विभाग किये जा सकते हैं । पहला भाग सुखियोंका है और दूसरा दरिद्रताके सताये हुओंका ।

(१) 'सुखी भारत' उन अंगरेजों और अन्य विदेशियोंका है, जो यहाँ अफ़सर, ग़ैर-अफ़सर, पूँजीदार आदि बनकर आते हैं और तरह-तरहसे यहाँका धन लूटकर अपने देशको पहुंचाते रहते हैं । उनके लिये तो भारत सचमुचही बड़ा धनी और सुखी देश है । वे यहाँसे जितना अधिक माल लूट ले जायेंगे, उतना ही उनकी आँखोंमें यह देश सुख-सम्पत्तिशाली जँचेगा । उनकी तो यह समझमें ही नहीं आयेगा, कि क्यों लोग भारतको दरिद्र देश कहते हैं, जब कि वे स्वयं इतना माल इस देशसे खींच ले जा सकते हैं ? वे भला सपनेमें भी काहेको सोचते होंगे, कि उनकी इस लूट-खसोटका असर बेचारे हिन्दुस्तानियोंपर कैसा होता है ?

(२) भारतका दूसरा भाग दरिद्रताके मारे हुए हिन्दुस्तानियोंका है । यही वह हिन्दुस्तान है, जिसका खून चूस

लिया गया है ; जिसकी सम्पत्ति, भूमि, श्रम और अन्यान्य सामग्रियोंको विदेशीगण नित्य लूटा करते हैं ; जो निस्सहाय, निरवलम्ब और निःशब्द होकर मनमाने क़ानून, ज़बरदस्तकी लाठी और अन्याय तथा अधर्मसे दवा हुआ है। यही भारतवासियोंका असली हिन्दुस्तान है, जो डेढ़ सौ वर्षोंसे अंगरेज़ी शासनके अधीन रहते हुए भी संसारका सबसे अधिक दरिद्र देश हो गया है। यह अँगरेज़ी राज्यके लिये बड़े कलङ्ककी बात है। जितनी अधिक यहाँकी सम्पत्ति हरण की जाती है, उतनीही दरिद्रता बढ़ती जा रही है। लार्ड सैलिसबरीकी यह उक्ति हमलोगोंको पद-पदपर याद आये बिना नहीं रहती, कि चाहे कोई कितनाही बड़ा शक्तिशाली क्यों न हो, पर अन्याय उसका सत्यानाश अवश्य कर डालेगा। यदि सुखी और दरिद्र भारतका यह भेद-गुलामोंके मालिकोंके हिन्दुस्तान और बेचारे गुलामोंके हिन्दुस्तानका यह फ़र्क़ ध्यानमें रखा जाये, तो इस विषयपर वादानुवाद करनेकी कोई जगह न रह जाये। यदि वृटेन चाहे, तो धर्मानुमोदित प्रणालीसे शासन कर भारतके इन दोनों भागोंको सुखी बना दे सकता है। परन्तु बड़े दुःखकी बात है, कि भारतके अधिकारी न तो इस बातकी ओर ध्यान देते हैं, न देना चाहते हैं। वे स्वार्थसे अन्धे हो रहे हैं, उन्हें केवल गोरे बच्चोंकी ही फ़िक्र है।

वृटिश-भारतके अधिकारी अपनी प्रजाका कोई अनुरोध या प्रार्थना नहीं सुनते। ऐसी अवस्थामें भारतवासियोंको इसके सिवा और कोई चारा नहीं है, कि वे वृटिश प्रजासे प्रार्थना करें। मैं यह कह देना चाहता हूँ, कि मुझे अँगरेज़ी प्रजाके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं करनी है। महारानी, वृटिश प्रजा और पार्लमेण्टने तो भारतीयोंके प्रति काममें लायी जानेवाली सत्य और न्यायपूर्ण नीति पहलेही निर्धारित कर दी है—ये सब अपना कर्त्तव्य पालन कर चुके हैं। परन्तु इनके नौकरही इनकी बातोंको झूठा किये डालते हैं। यहाँ और वहाँ जो भारतके अधिकारीवर्ग हैं, वे उस नीतिकी ओर नज़रतक नहीं डालते। इसीलिये मैं निरुपाय होकर वृटिश प्रजा और इस कमिशनसे प्रार्थना करता हूँ, कि आपलोग महारानी और पार्लमेण्टकी आज्ञाओंको भारतीय नौकरशाहीसे मनवानेकी चेष्टा करें। मुझे अपने उन विचारोंको फिर यहाँ दुहरानेकी कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती, जिन्हें मैं अपने पूर्वके प्रार्थनापत्रोंमें व्यक्त कर चुका हूं। उनमें मैंने भारतपर किये जानेवाले अन्यायों और शासन-व्ययके विभागकी गड़बड़ीके बारेमें अच्छी तरह अपनी राय प्रकट की है। अब यदि कमीशन चाहे, तो मेरी एक-एक बातपर मुझसे जिरह कर सकता है।

यहाँ मैं कुछ थोड़ीसी बातें और कह देना चाहता हूँ, जो

इस कमीशनके सामने दी हुई गवाहियों और परिवर्त्तित स्थिति-योंके कारण मेरे मनमें उत्पन्न हुई हैं।

भारतवासियोंसे बार-बार कहा जाता है और इस कमिशनके सामने भी कहा गया है, कि भारतवासी वृटिश-शासनके अंशभागी हैं; अतएव उन्हें साम्राज्यका बोझ उठानेमें हाथ बटानाही चाहिये। इसपर मैं एक प्रस्ताव परीक्षाके तौरपर पेश करता हूँ। मान लीजिये, कि साम्राज्यके नौ-सेना-विभागका कुल खर्च २०,०००,००० पौण्ड है और अंश-भागी होनेकेही कारण आप वृटिश-भारतसे १०,०००,००० पौण्ड देनेको कहते हैं। भारतवासी इसे देनेको तैयार हैं; पर आपको भी तो उनके साझेका खयाल करके उन्हें इस विभागमें नौकरी और अन्यान्य अधिकार प्रदान करने चाहिये। उसी प्रकार सेनाकी बात ले लीजिये। मान लिया, कि इसका कुल व्यय साम्राज्यभरके लिये ४०,०००,००० पौण्ड है और आप अपने भागीदार वृटिश-इण्डिया से २०,०००,००० पौण्ड तलब करते हैं। तब क्यों नहीं भारतवासी भी इस बातका दावा करें, कि उन्हें इस विभागमें सब प्रकारकी नौकरियाँ और सुविधाएँ प्राप्त हों? यह तो उन्हें मिलनीही चाहियें। परन्तु यदि आप इन असहाय और बेज़ुबान हिन्दुस्तानियोंसे ज़बरदस्ती वसूलही करते रहेंगे और उन्हें बदलेमें कुछ देंगे नहीं, तो आपका यह अन्याय वैसाही होगा,

जैसा गुलामोंके मालिक गुलामोंपर किया करते थे। संक्षेपतः, यदि आप वृटिश-भारतको साम्राज्यका अंश-भागी मानते हैं, तो जितना खर्च हिन्दुस्तानसे वसूल किया जाता है, उसी हिसाबसे प्रत्येक विभागमें—चाहे वह शासन-सम्बन्धी हो या सेना अथवा नौ-विभागके सम्बन्धका, उसमें इसके अधिवासियोंको नौकरियाँ और सुभीते प्राप्त होने चाहियें। तभी हिन्दुस्तानको वृटिश-साम्राज्यका भीतरी अंश कहेंगे। यदि अँगरेजोंमें धर्म और सम्मानका बोध बाकी रह गया हो, तो वे यही काम करें—यही उनका उचित कर्त्तव्य है। तभी यह साम्राज्य सच्चा साम्राज्य और हमारा साझा सच्चा साझा कहलायेगा। नहीं तो सब झूठाही समझना होगा। इस कमीशनकी यही गुत्थी सुलझानी है। इसीकी सफाई हो जानेपर यह बात अच्छी तरह खुल जायेगी, कि हमसे जो कुछ खर्च वसूल किया जाता है, उसका उचित विभाजन किस प्रकार किया जा सकता है। मैं अँगरेजी प्रजासे इसके लिये सविनय अनुरोध करता हूं। मैं गत चालीस वर्षोंसे देख रहा हूँ, कि अँगरेज लोग सदैव पीड़ित और निरवलम्बोंका ही पक्ष अवलम्बन करते हैं। आज भी मैं देखता हूं, कि वे हजारों आरमेनियनोंकी रक्षाके लिये यथाशक्य बड़ी चेष्टा कर रहे हैं और रुपयेको पानीकी तरह बहा रहे हैं। यह सब देखकर तो मुझे यह विश्वास नहीं होता, कि

ऐसी प्रकृतिवाले अँगरेज, अपनेही नौकरों द्वारा जारी किये हुए उस तरीके को पलटनेसे भला क्योंकर इनकार कर देंगे, जिसकी बदौलत न केवल कुछही हज़ार-लाख, बल्कि करोड़ों आदमी मरते हैं, लाखों आधा पेट खाकर रह जाते हैं और सालभर दुःख पाते रहते हैं। फ़ेमीन-रिलीफ़-फण्ड (दुर्भिक्ष-निवारक कोष) तो कुछ भी नहीं है। यह तो भूखसे मरते हुए लोगोंपर ही टैक्स लगाना और मरे हुए लोगोंको बचानेकी चेष्टा करना मात्र है। यह फण्ड न तो आसमानसे टपकता है, न अँगरेज़ी राजकोषसे निकाला जाता है। यदि गवर्नमेण्ट इस साल ५० लाख पौण्ड दुर्भिक्ष-पीड़ितोंकी सहायताके लिये खर्च करना चाहे, तो वह इस रक़मको बचे हुए लोगोंपर टैक्स लगाकरही वसूल करेगी। परिणाम यह होगा, कि आगे साल ये लोग भी दुर्भिक्षके शिकार हुए बिना नहीं रहेंगे।

बृटिश जनतापर इन लाखों आदमियोंके नष्ट होने और करोड़ों के भूखों मरनेका अपराध लगाया जा सकता है। यह माना, कि वे जान-बूझकर यह अपराध नहीं करते; परन्तु इसीलिये यह अपराध उनपर लगाया जा सकता है, चूँकि वे ऐसे अधिकारियोंको भारतको थातीकी तरह सौंपे हुए हैं, जो यहांका धन मनमाने ढँगसे फूंकते हैं और ऐसी स्वार्थान्धता तथा राजनीतिक धूर्त्ततासे काम लेते हैं, जो प्रजाके लिये नितान्त घातक

जैसा गुलामोंके मालिक गुलामोंपर किया करते थे। संक्षेपतः, यदि आप वृटिश-भारतको साम्राज्यका अंश-भागी मानते हैं, तो जितना खर्च हिन्दुस्तानसे वसूल किया जाता है, उसी हिसाबसे प्रत्येक विभागमें—चाहे वह शासन-सम्बन्धी हो या सेना अथवा नौ-विभागके सम्बन्धका, उसमें इसके अधिवासियोंको नौकरियाँ और सुभीते प्राप्त होने चाहियें। तभी हिन्दुस्तानको वृटिश-साम्राज्यका भीतरी अंश कहेंगे। यदि अँगरेज़ोंमें धर्म और सम्मानका बोध बाक़ी रह गया हो, तो वे यही काम करें—यही उनका उचित कर्त्तव्य है। तभी यह साम्राज्य सच्चा साम्राज्य और हमारा साझा सच्चा साझा कहलायेगा। नहीं तो सब झूठाही समझना होगा। इस कमीशनकी यही गुत्थी सुलझानी है। इसीकी सफाई हो जानेपर यह बात अच्छी तरह खुल जायेगी, कि हमसे जो कुछ खर्च वसूल किया जाता है, उसका उचित विभाजन किस प्रकार किया जा सकता है। मैं अँगरेज़ी प्रजासे इसके लिये सविनय अनुरोध करता हूँ। मैं गत चालीस वर्षोंसे देख रहा हूँ, कि अँगरेज़लोग सदैव पीड़ित और निरवलम्बोंका ही पक्ष अवलम्बन करते हैं। आज भी मैं देखता हूँ, कि वे हज़ारों आरमेनियनोंकी रक्षाके लिये यथाशक्य बड़ी चेष्टा कर रहे हैं और रुपयेको पानीकी तरह बहा रहे हैं। यह सब देखकर तो मुझे यह विश्वास नहीं होता, कि

ऐसी प्रकृतिवाले अँगरेज, अपनेही नौकरों द्वारा जारी किये हुए उस तरीकेको पलटनेसे भला क्योंकर इनकार कर देंगे, जिसकी बदौलत न केवल कुछही हज़ार-लाख, बल्कि करोड़ों आदमी मरते हैं, लाखों आधा पेट खाकर रह जाते हैं और सालभर दुःख पाते रहते हैं। फ़ेमीन-रिलीफ-फण्ड (दुर्भिक्ष-निवारक कोष) तो कुछ भी नहीं है। वह तो भूखसे मरते हुए लोगोंपर ही टैक्स लगाना और मरे हुए लोगोंको बचानेकी चेष्टा करना मात्र है। यह फण्ड न तो आसमानसे टपकता है, न अँगरेज़ी राजकोषसे निकाला जाता है। यदि गवर्नमेण्ट इस साल ५० लाख पौण्ड दुर्भिक्ष-पीड़ितोंकी सहायताके लिये खर्च करना चाहे, तो वह इस रकमको बचे हुए लोगोंपर टैक्स लगाकरही वसूल करेगी। परिणाम यह होगा, कि आये साल ये लोग भी दुर्भिक्षके शिकार हुए बिना नहीं रहेंगे।

वृटिश जनतापर इन लाखों आदमियोंके नष्ट होने और करोड़ोंके भूखों मरनेका अपराध लगाया जा सकता है। यह माना, कि वे जान-बूझकर यह अपराध नहीं करते; परन्तु इसीलिये यह अपराध उनपर लगाया जा सकता है, चूँकि वे ऐसे अधिकारियोंको भारतको थातीकी तरह सौंपे हुए हैं, जो वहाँका धन मनमाने ढँगसे फूंकते हैं और ऐसी स्वार्थान्धता तथा राजनीतिक धूर्त्ततासे काम लेते हैं, जो प्रजाके लिये नितान्त घातक

है। भारतमें एक कहावत मशहूर है, कि "पीठपर चाहे जितना मार लो ; पर किसीका पेट न काटो।"

निरंकुश देशी राजाओंके अधीन प्रजाकी पीठपर अवश्यही कभी-कभी मार पड़ती रहती है ; परन्तु वह अपनी पैदावारको अपने पास रखने पाती और सुखसे समय बिताती है ; पर यहाँ अँगरेज़ी राज्यमें निरंकुश नौकरशाहीके अधीन रहनेवालेपर मार तो नहीं पड़ती , परन्तु उसका यथासर्वस्व चुपचाप लुटता चला जाता है। वह तो शान्तिके साथ सोया रहता है और; उसकी सम्पत्तिका क्रमशः नाश होता रहता है। वह आधे पेट खाता और भूखों मर जाता है। वह मरता भी है, पर शान्तिके साथ, क़ानून और व्यवस्थाके आनन्द लूटते हुए! मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है, कि अँगरेज़ मनुष्योंको ऐसी दुर्दशामें देखकर भी कैसे चुप रहते हैं ? इसीलिये मैं अँगरेज़ी प्रजासे कहता हूँ, कि आपलोग भलेही दरिद्र आर्मेनियनोंकी सहायता कीजिये ; पर अपने घरको न भूल जाइये —अपनी उन लाखों प्रजाओंको कुत्तोंकी तरह न मरने दीजिये, जिनसे आपने अरबोंकी सम्पत्ति उपार्जनकी है, जिनकी बदौलत आपको एक ऐसा बृहत् साम्राज्य हाथ लग गया है, जिसमें आपको एक कौड़ी भी गांठकी नहीं लगानी पड़ती और जो आपके हज़ारों लाखों भाइयोंको रोज़ी-रोज़गार देकर जिला रहा है।

सवाल यह नहीं है, कि अकाल पड़ने पर क्या करना चाहिये ? असल सवाल तो यह है, कि बार-बार अकाल पड़ना क्योंकर बन्द हो सकता है ? जबतक वर्त्तमान अन्यायी शासन-नीतिका अन्त नहीं होगा, तबतक भारतके दुःखोंका अन्त नहीं हो सकता। पश्चिमी सभ्यता सिखलाकर हमारा जो उपकार किया गया है, उसके लिये हमलोग आप लोगोंके कृतज्ञ हैं, पर हमें केवल आपकी सभ्यता ही नहीं चाहिये, हमें तो आपके उस धर्म और आत्मसम्मानकी आवश्यकता है, जो हमारे यहाँ अकाल न पड़ने दे और दोनों देशोंको सुखी बनाये। वर्त्तमान अकालके अवसर पर अँगरेज़ोंने हमारी सहायता ७००,००० पौंड देकर की है ; पर उन्हें याद रखना चाहिये, कि दरिद्र भारतसे वे इस रक़मकी तीसगुनी चालीसगुनी रक़म हर साल वसूल किया करते हैं। गत बारके अकालसे लेकर आजतक उन्होंने जितनी रक़म यहांसे वसूल की है, उसे देखते हुए वे यदि इस बार हमें ४,०००,०००, या ५,०००,००० पौंड भी दे डालें, तोभी कमही है। अंगरेज़ी प्रजाका यह धर्म है, कि उसने जिस तरह काफ़ी तादादमें हमसे रुपये पाये हैं, उसी तरह काफ़ी रक़म हमारी मददके लिये खर्च करे, यद्यपि जितना उसने पाया है, उतना न तो हम मांग सकते हैं, न वह दे सकती है। यों तो भारतवासी ऐसे सीधे-सादे हैं, कि आप जो कुछ

उन्हें दे देंगे, उसीको लेकर वे आपकी जयजयकार मनाने लगेंगे।

दूसरी बात यह है, कि यदि बृटिश-प्रजा इस समय शीघ्र हमें कुछ दे देगी, तो दुगना लाभ होगा। पहला तो यह, कि लाखों आदमी बेमौत मरनेसे बच जायेंगे और दूसरा यह, कि जो मरनेसे बचेंगे, वे टैक्स देनेसे भी बच जायेंगे; क्योंकि इस समय सरकार उनकी जितनी सहायता करेगी, उतनी रक़म वह फिर प्रजापर टैक्स लगाकर वसूल कर लेगी। सरकार जो डङ्केकी चोट अपनी उदारताका बखान करती रहती है, वह कोरी डींग-ही डींग है; क्योंकि वह जो कुछ अकालके लिये ख़र्च करेगी, उसकी पाई-पाई नया टैक्स लगाकर वसूल कर लेगी; क्योंकि भारतकी प्रजा बेज़ुबान है, वह कुछ भी नहीं कर सकती, तुम चाहे जितने टैक्स लगाते चले जाओ। भारत-सरकारकी इस डींगमें केवल पोल-ही-पोल है। मुझे आश्चर्य इस बातका नहीं, कि वे किस तरह नये-नये टैक्स लगा लेते हैं, पर इस बातका आश्चर्य अवश्य है, कि ये किस बेशर्मीके साथ कहते हैं, कि हमने अकाल-पीड़ितोंकी अपने धनसे रक्षा की! ख़ास करके ऐसी हालतमें, जबकि वे अपनी बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें लेकर ही चुप नहीं बैठ रहते, बल्कि शाइलककी तरह अनुचित रूपसे ख़ून चूसने से भी बाज़ नहीं आते!

ऐंग्लो-इंडियनोंकी सबसे बड़ी दलील यह है, कि भारतकी रिद्रता और अकालका कारण यहाँकी जनसंख्याकी वृद्धि है। इस विषयमें पहले भी बहुत कुछ कह चुका हूं, तो भी यहां ौर कुछ कहना ज़रूरी मालूम पड़ता है। मेरी सबसे पहली ात तो यह है, कि कोई ऐंग्लो-इन्डियन, चाहे वह अफ़सर हो ा ग़ैर-अफ़सर, इस दरिद्रता और बार-बारके अकालका कारण तलानेका दावा नहीं कर सकता। जो अपराधी होता है, ही अपराधका फैसला करनेके लिये जज नहीं बनाया जा ाकता। उसी तरह इस सम्बन्धमें ऐंग्लो-इन्डियन लोग ज़बान हीं हिला सकते; क्योंकि दर असल वेही अपराधी हैं। उन्हींके ार्थोंकी सिद्धिके लिये हम इतना कष्ट उठाते रहते हैं। वे यदि पना हाथ खींच लें और भारतवासियोंके आगेकी थालीमें हाथ ा लगायें, तो देखिये, यह जन-संख्याकी वृद्धि हमारे सुखका हेतु ोती है या दुःखका। तभी आप देखेंगे, कि उस समय भारत-ासी आपके मालोंके कैसे पक्के और गहरी रक़म देनेवाले ख़रीदार साबित होते हैं। इस समय आप सारी दुनियाँसे व्यापार करके जो लाभ उठाते हैं, वह अकेले भारतके व्यापारसे ही उठा सकेंगे।

अब मैं इस समयकी एक बड़ी विचित्र बातकी ओर आप लोगोंका ध्यान आकर्षित करता हूं। भाग्यके फेरसे रूसवाले

रूस स्वयं भारतकी सहायताको अग्रसर हो रहे हैं। मैं पूछता हूं, कि जिस रूसको ये ऐंग्लो-इन्डियन हरदम नरकका कारण समझते हैं, उसकी इस सहायताको देखकर यहांवालों पर कैसा असर पहुंचेगा? रूसका भीतरी मतलब क्या है, उसका तो मैं अनुमान भी नहीं कर सकता, पर यह देखकर डर जाता हूं, कि उसके दूत लोग सम्भवतः यहां तरह-तरहके भाव लोगोंके मनमें उत्पन्न कर देंगे। लोगोंका ऐसा खयाल हो जा सकता है कि रूसवाले हमारे बड़े हित चाहनेवाले हैं, बड़े दयालु हैं, तभी तो इस तरह हमारी सहायता कर रहे हैं। वे और भी कहेंगे—"देखो, न केवल रूसी प्रजाका, बल्कि रूसके सम्राट्का हृदय भी तुम्हारी ओर बड़ा ही सहानुभूति-पूर्ण हो रहा है, क्योंकि यदि न होता, तो वे अपनी पुस्तकमें इस शासनकी भरपेट निन्दा क्यों करते, जो कि लगातार तुम्हारा खून चूस रहा है?" १०वीं दिसम्बरके "टाइम्सने" ऐंग्लो-रूसी सन्धिके विषयमें जो सम्पादकीय लेख लिखा है, उसमें लिखा है,—"रूस निश्चयही अपनी नीतिके प्रसारकी चेष्टा करेगा और अपना स्वार्थ-साधन करनेसे न चूकेगा। वह अपने एशियाई साम्राज्यकी वृद्धिपर तुला हुआ है।" पर हिन्दुस्तानके अधिकारीवर्गको यह नहीं सूझता, कि भारतीय प्रजाके (मौखिक नहीं) सहानुभूतिके बिना वे लोग

अपनी स्थितिको दृढ़ बनाये न रह सकेंगे। क्या यह सम्भव है, कि कोई जाति दूसरी जातिको दासत्वको शृंखलामें जकड़ रखे और साथ ही यह भी आशा करे, कि वह जाति उसे सच्ची सहानुभूति और हार्दिक राजभक्तिकी पात्री समझेगी? यह बात एकदम प्रकृतिके विरुद्ध—मनुष्य-स्वभावके विपरीत है। सत्य, न्याय और धर्मका ही सदा बोल-बाला रहता है—यही अन्ततक स्थायी रहते हैं। घटनाएं बड़ी तेजीसे रंग बदलती जा रही हैं। अब वह समय आ गया है, कि इस प्रश्नका निपटारा कर दिया जाये, कि भारत बृटिश-साम्राज्यका सच्चा अंशभागी और उसके बलका एक साधन होकर रहेगा या दास और कमज़ोरीका कारण होकर। अबतक वह शेषोक्त रीतिसे रहता आया है। प्रत्येक निष्पक्षपात मनुष्य इस बातको स्वीकार करेगा, कि इसी प्रश्नपर बृटिश-साम्राज्य तथा भारतका भविष्य निर्भर है; क्योंकि भारत इस साम्राज्यका पांच बटे चार हिस्सा है।

मैं एक प्रश्न और उपस्थित करना चाहता हूं। यह प्रश्न मैं कितनी ही दफे कर चुका हूं और बार-बार इसकी उपेक्षा की गयी है। मान लीजिये, कि बृटिश-प्रजा भी किसी विदेशी जाति द्वारा ऐसीही अधीन बना ली गयी (जैसी अधीनतामें भारतनिवासी पड़े हुए हैं), तो क्या वह एक दिन भी ऐसे

निरंकुश शासनका जुआ अपने कन्धेपर पड़ा रहने देगी ? क्या वह उसी दिन उसके विरुद्ध विद्रोह न कर बैठेगी ? जरूर ही कर बैठेगी। परन्तु ऐसा होते हुए भी वृटिश प्रजा क्योंकर भारतीयोंपर ऐसा निरंकुश शासन होने देती है, जो उन्हें निस्सहाय और मूक-दास बनाये हुए है। मेकालेने ठीक ही कहा है,—

"यह एक बड़ी मूर्खताकी बात होगी; कि हिन्दुस्तानको गुलाम बनाये रखनेकी धुनमें हम पानीकी तरह रुपया खर्च करें और करोड़ों प्रजाजनोंको अपने मालका खरीदार बननेसे रोके रहें।"

इस बीमारीकी दवा मैंने अपने पहले आवेदनमें बतला दी थी, अतएव मैं उसका यहाँ ज़िक्र नहीं करता ; पर ८वीं दिसम्बरके "टाइम्सने" भारतीय स्थितिपर लेख लिखते हुए लार्ड सैलिसबरी और लार्ड इडिसलेकी बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञता-की प्रशंसा करते हुए उनकी न्याय, धर्म और बुद्धिमत्तापूर्ण नीतिका उल्लेख किया है, अतएव मैं भी उसके कुछ शब्दोंको यहाँ उद्धृत कर देना चाहता हूं। सौभाग्यसे यह धर्म-पूर्ण कार्य भी उसी मैसूर-रियासतके प्रति किया गया है, जिसका मैं पहले जि़क कर चुका हूं। "टाइम्स" लिखता है,—

"सर शेषाद्रि ऐयरने अपने गत वर्षके प्रबन्ध और सुशासनकी

जो रिपोर्ट दी है, उससे पता चलता है, कि यहाँकी मालगुज़ारी की आय बढ़ गयी, प्रजापर टैक्स कम हो गये, व्यय-बाहुल्य नहीं होने पाया, सरकारी इमारतें खूब बनीं, कृषिकार्यमें विशेष उन्नति हुई, खनिज-व्यापार और उद्योग-धन्धेकी भी अच्छी तरक्की हुई। इसका परिणाम यह हुआ है, कि आजतक इन्हीं सब विषयोंमें जो आमदनी होती आयी है, उससे कहीं अधिक आमदनी हुई और राज्यका कोष समृद्ध हुआ।"

वर्तमान बृटिश-शासन और उसके आय-व्ययकी वर्तमान प्रणाली क्या कभी भारतमें भी अपने प्रबन्धका ऐसा शुभ फल उत्पन्न कर सकती है? नहीं—कदापि नहीं। यहाँ दर्जनों ग्लैडस्टोनोंका किया कुछ न होगा। उल्टे यह लगातार और बढ़ता हुआ रक्त-शोषण व्यापार शक्तिको घटाया ही करेगा और अन्तमें जान लेकर ही छोड़ेगा। टाइम्सके उसी लेखके अन्तमें लिखा है,—

"सर शेषाद्रि ऐयरने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, उससे यह मालूम होता है, कि देशी राज्योंमें समृद्धि बढ़ रही है और हमारे लिये यह अच्छी बात है; क्योंकि इससे हमें भारतमें नये-नये व्यवसाय और नयी-नयी रेलें जारी करनेका मौक़ा हाथ लगेगा।"

क्या यही बात बृटिश-भारतके विषयमें भी कही जा सकती

है ? नहीं, हरगिज़ नहीं। मैं एक और भी अवतरण आप लोगोंके सामने पेश करता हूं, इसे भी पढ़ देखिये :—

"वर्त्तमान वर्षके आरम्भमें बम्बईके एक राजाने आस-पासकी रेलवे लाइनोंका अनुभव प्राप्त कर एक नया ढंग निकाला है। उन्होंने रेलवे तैयार करनेके लिये पड़ोसी राज्यसे 'सार्वजनिक ऋण' (Public loans) लेनेका विचार किया और इस नीतिपर सबसे पहले जामनगर-नरेश श्रीमान् राजा यशवन्तसिंहने गोण्डालके राजा सर भागवत सिंहजीसे २० लाख रुपयेका ऋण ८ वीं जनवरी १२६६ को लिया है।"

अब जो लोग जामनगरकी स्थितिको भली-भाँति जानते हैं, वे कह सकते हैं, कि साधारण सुप्रबन्धके द्वारा ही यह राज्य शीघ्र अपना ऋण-परिशोध कर सकेगा, जैसा कि मैसूर-राज्यने अभी हालमें कर डाला है। गोण्डालराज्यने भी तो सुप्रबन्धके ही द्वारा इतनी बड़ी रकम अपने एक पड़ोसी राजा को दी है। यह बात भी स्मरण रखने योग्य है, कि गोण्डाल-रियासतने अपनेही धनसे, बिना किसीसे सहायता या ऋण लिये ही, हालमें अपने राज्यमें रेल चलवा दी हैं।

मुझसे बढ़ कर शायद ही किसीको यह देख प्रसन्नता होती होगी, कि साधारण खर्च और सुप्रबन्धसे ही देशी राज्योंकी समृद्धि बढ़ती जाती है और बेहिसाब खर्च करके भी अंगरेज़ी

शासन भारतमें कुछ नहीं कर पाता। इसे देखकर लार्ड सैलिसबरी और लार्ड ईडिसलेकी बातका समर्थन हो जाता है और उनका उपदेश उचित प्रतीत होता है। यद्यपि मैं उन लोगोंकी बातें अपने गतवारके आवेदन-पत्रमें बतला चुका हूं, तो भी कुछ बातें यहाँ फिर बतला देना ज़रूरी समझता हूं। लार्ड सैलिसबरी कहते हैं,—

"जो लोग भारतवर्षको अच्छी तरह जानते हैं, वे इस विषयमें पूर्णतया सहमत हैं, कि सुशासित देशी राज्योंकी बदौलत भारतीय प्रजाकी नैतिक और राजनीतिक स्थितिका बहुत कुछ अभ्युदय हो सकता है······परन्तु मेरी समझ तो यह है, कि एक भी सुशासित और सुव्यवस्थित देशी राज्यकी स्थिति हमारे शासनकी स्थितिके लिये परमावश्यक है ; क्योंकि इससे तद्देशवासियोंमें आत्मगौरवका आविर्भाव होता है और उनके भावों और भावनाओंको एक ऐसा आदर्श प्राप्त होता है, जिसके पास पहुंचनेका उच्चाभिलाप उनके मनमें उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता।"

बृटिश-शासनकी भिन्न-भिन्न बातोंका उल्लेख कर वे कहते हैं, कि उसमें इतनी खराबियाँ भरी हुई हैं, कि उससे यहाँके लोगोंका दुःख-दारिद्र्य बढ़ता ही जाता है। यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है, कि भारतके सभी नामी-नामी बन्दरगाहों और

समृद्धिशाली प्रान्तों पर अँगरेज़ोंकाही अधिकार है। इस हिसाबसे तो अलग समृद्धिशाली देशी राज्योंकी प्रजाकी अपेक्षा बृटिश-भारतकी प्रजाको अधिक समृद्धिशाली होना चाहिये, परन्तु बात उल्टी है। बृटिश-भारतकी प्रजा १५० वर्षके उसी बृटिश-शासनके बाद दुःखोंके भयानक भँवरजालमें पड़ गयी है, जिसकी बड़ाई करते हुए लोग नहीं अघाते और जिसके नौकरोंको दुनियाँ भरसे अधिक गहरी रक़में तनख़ाहमें दी जाती हैं। लार्ड सैलिसबरीने इस दुर्दशाको दूर करनेका जो उपाय बतलाया था, उससे पूर्ण सहमत होते हुए लार्ड ईडिसलैने भी कहा है, कि इस रीतिसे काम करनेसे भारतीय प्रजा सुखी होगी और अंगरेज़ोंके हित और स्वार्थकी भी रक्षा होगी। १५ वर्षके अनुभवके बाद आज "टाइम्स" भी वही बात कह रहा है, जो उपर्युक्त दोनों लार्ड कभीके कह चुके हैं।

ऐंग्लो-इण्डियन भाइयोंकी दूसरी बड़ी भारी दलील यह है, कि भारतीयोंमें योग्यताका अभाव है। गतवर्ष इस बातको दो-एक गवाहोंने प्रमाणित करनेकी चेष्टा भी की थी। मैंने ईस्ट-इण्डिया-एसोसियेशनके मुखपत्रमें एक निबन्ध लिख कर इस बातकी निस्सारता प्रकट कर दी थी; पर मैं उसे पढ़कर आप लोगोंको सुनाना नहीं चाहता। अत्याचारियोंकी यह प्राचीन रीति है, कि वे आपके साथ न्याय तो कभी करेंगे नहीं,

उलटे आपको अयोग्य बतला-बतलाकर आपहीको फटकारते चले जायेंगे। भारतीयोंके साथ यह कैसा घोर अन्याय किया जाता है, कि वे अपनेही देशमें नौकरी पानेके लिये यहाँ परीक्षा देने आते हैं और कभी सेना तथा नौ-सेना विभागोंमें कमिशण्ड-अफ़सर नहीं होने पाते। यह बात पार्लामेण्टके क़ानूनों और इंग्लैण्डकी अधीश्वरीकी प्रतिज्ञाके बिल्कुल विपरीत है। यद्यपि यह विषय बड़ाही महत्त्वपूर्ण है, तथापि मैं इस विषयमें और कुछ कहना नहीं चाहता। मैं सिर्फ़ आप लोगोंका ध्यान ५ वीं अकटूबरके "टाइम्स" नामक पत्रमें प्रकाशित भारतीय प्रश्नोंके विचारकी ओर आकर्षित करना चाहता हूं। उसमें बड़ी उदारताके साथ हमारी निस्सहाय अवस्थाका विवेचन किया गया है।

लार्ड उल्सलीने कहा है, कि हमी लोगोंने भारतको ऐसा बनाया है। सर राल्फ़ नाक्सका कहना है, कि मेरे ख़यालसे हिन्दुस्तानकी वर्त्तमान अवस्था हमारी सृष्टि है। मैं इन सज्जनों की इस बातको बहुत ठीक मानता हूं। यदि आप लोगोंने नहीं तो और किसने भारतको ऐसा बनाया, कि आज उसे विदेशीगण दोनों हाथोंसे लूट रहे हैं; वह महा दुखी, दरिद्र निस्सहाय और मुंह-बन्द हो रहा है; उसके लाखों आदमी अकाल और अन्नाभावसे तड़प-तड़पकर मरते जाते हैं, उसका

नस-नसका ख़ून चूसा जा रहा है और वह इंग्लैण्डवालोंके लिये पूरा ग़ुलामख़ाना बन रहा है।

यह दुरवस्था किस प्रकार उत्पन्न की गयी, उसका मैं कुछ वर्णन कर देना चाहता हूं। इसका पता आपको कम्पनीके कोर्ट-आफ़-डाइरेक्टर्स और लार्ड क्लाइवकी ही बातोंसे चल जायेगा। कोर्ट-आफ़-डाइरेक्टर्सने लिखा है,—

१ —"बड़ा घोर अन्याय किया गया" (८-२—१७६४)

२ —"उन लोगोंने सन्धिके नियमोंको तोड़ डाला, बड़े-बड़े अत्याचार किये और तरह-तरहके अन्याय कर अपनी जेबें गरम कीं।" (२६-४-१७६५)

३ —"हमारे सभी नौकरोंमें बेईमानी, लूट-तराज, और दुराचार भरा हुआ था। ...... प्रायःदेशभरमें अंगरेज़ोंने निस्सहाय देश-वासियों पर अत्याचार किये।......उस लोगों-की बेईमानी, बदमाशी और शरारतका हम लोगोंको बड़ा दुःख है ...उन्होंने जैसे जुल्म किये, जो-जो सितम ढाये,वे किसी युगमें, किसी देशमें न देखे गये थे न सुने।" (१७-५-१७६६)

अब लार्ड क्लाइवकी भी दो बातें सुन लीजियेः—

"लूट-खसोट और ऐशोइशरतमें ही हमारे आदमी मसग़ूल रहे।"

"यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, कि धनकी लालसा पूरी

करनेके लिये लोगोंने मनमाने काम किये और आप लोगोंने उनके हाथमें जो अधिकार दे रखा था, उसका उन्होंने पूरा-पूरा दुरुपयोग किया; क्योंकि कम करनेसे तो उन्हें माल भी कम ही हाथ लगता।"

"जहाँ देखो, वहीं आराम-तलबी, घूसखोरी, लालच और पराया माल हड़प जानेकी बदनीयती जोरों पर थी।"

"आरामतलबी, घूसखोरी और दुश्चरित्रताका बाज़ार ख़ूब गरम रहा।"

"हमारे अधिकृत देशमें बड़ी बुराइयाँ भरी थीं।"

"उन अत्याचारों और बेईमानीके कामोंको देखकर शर्म भी शर्मसे मुंह छिपा लेती है।"

"बड़ी बुरी तरहसे लोगोंसे रुपये पेंठे गये और उन्हें अत्याचारकी चक्कीमें पीस डाला गया।"

"सारे राज्य-शासनमें घूसख़ोरी और नीचता भरी हुई थी। यदि उन सब बातोंको प्रकट किया जाये, तो फिर हम दुनियाँमें मुंह दिखाने लायक़ न रहें। उन बातोंसे हमारी जाति पर कलङ्क लगेगा और बड़े नामी-नामी परिवारोंके नाममें धब्बा लग जायेगा।"

जब अंगरेज़ोंने शुरू-शुरू यहाँ अपने पैर जमाये, तब भारतीयों और अंगरेज़ोंमें ऐसा ही पवित्र (!) सम्बन्ध था, जैसा

कि उपर दिखलाया गया है। भारतको इस दुर्दशामें ले आनेका पुण्य अंगरेज़ोंने ही लूटा है और इसी तरहसे लूटा है।

ख़ैर, वह जमाना गया, तो घूसखोरी, बेईमानी, लूटपाट और अत्याचारकी जगह बड़ी-बड़ी तनख़्वाहोंने ले ली। पराये धनको अपने आदमियोंमें इस तरह वितरण करना अत्यन्त सहज और प्रिय व्यापार है। पर चाहे जैसे लूटो, हमारा धन तो लुटता ही चला जाता है। उलटे उसकी तादाद पहलेसे दस-गुनी बढ़ गयी है। क्या इण्डिया-आफ़िस उसकी ठीक-ठीक तादाद बतला सकता है?

इसके सिवा हमारा ही धन हमको ऋण कहकर दिया जाता है। हमारी रक़में बड़ी-बड़ी विलायती कम्पनियोंको उधार दी जाती हैं। इस प्रकार न तो हमें अच्छी नौकरी मिलती, न किसी अच्छे विभागका अनुभव ही होने पाता। हम हर तरहसे दरिद्र और असमर्थ होते चले जाते हैं। इतने पर भी लोग कहते हुए नहीं शर्माते, कि हम दिन-दिन अधिक सुखी होते जाते हैं! भगवान् न करे, कभी हमारी तरह सुखी होनेका सौभाग्य बृटिश-प्रजाको भी प्राप्त हो।

यहाँतक लिख चुकनेके बाद ही मैं मैन्शन-हाउस वाली सभा में गया था। मैं उन व्याख्यान-दाताओंकी निन्दा नहीं करता, पर यह देखकर दुःख हुए बिना न रहा, कि उन्होंने अपने ही

मुंहसे उस बुरे वर्तावकी बात स्वीकार कर ली, जो इंग्लैण्ड भारतके साथ कर रहा है। आश्चर्य तो इस बातका है, कि वे विचारे यह नहीं समझते थे, कि वे कैसी अधार्मिक और अन्याय-पूर्ण बातको स्वीकार कर रहे हैं। उलटे, वे लोग इसे भारत-के अधिकारीवर्गके लिये बड़े गौरवकी बात समझते थे। परन्तु प्रकृतिने स्वयं उनके दोष उनके मुंहसे कहलवा दिये। इंग्लैण्ड-की प्रजाको यदि किसी बातका अभिमान है,—और वह अभि-मान वास्तवमें उचित है—तो वह यही है, कि वे बड़े स्वतन्त्राप्रिय हैं, वे किसी निरंकुश शासनके नीचे नहीं रहना चाहते, उन्होंने अपने राज्यशासनको सुव्यवस्थित रखनेके लिये अपने एक राजाका सिर उतार लिया और दूसरेको गद्दीसे उतार डाला, जिसमें शासनमें उनकी आवाज ऊंची रहे, उन्होंने अपने गीतोंमें स्वतन्त्रताका गान गाया है और वे कहा करते हैं, कि हम कभी किसीके गुलाम होकर नहीं रहेंगे, वे विना प्रजा-की सम्मतिके टैक्स लगाये जानेको घोर अत्याचार समझते हैं और किसी मनुष्य पर अत्याचार नहीं होने दे सकते। ऐसे स्वतन्त्रता-प्रिय मनुष्योंके केन्द्रमें ही एक स्थान पर स्वीकारोक्ति की जाती है, कि उन्होंने भारतके करोड़ों मनुष्योंको उनके अधि-कार छीन कर भार ढोनेवाले पशुओंकी श्रेणीमें पहुंचा दिया है, उनका अपने राज्यशासनके विषयमें कुछ बोलने तकका अधिकार

नहीं रहने दिया है और जानबूझ कर घोर निरंकुशताकी चक्कीमें उन्हें पीस डाला है। मेकॉले कहा करते थे, कि विदेशीका शासन बड़ा ही बुरा मालूम होता है; पर भारतीयोंको तो न केवल विदेशी, बल्कि घोर निरङ्कुश शासकोंसे पाला पड़ा है। साथही उन पर विपत्तियोंके पहाड़से लदे गये हैं और उनका माल दिन-रात लूटा जा रहा है। क्या हैरत है, कि एक अंगरेज, आप तो गुलाम न होगा; पर वह करोड़ों मनुष्योंको गुलाम बनानेमें लज्जा या सङ्कोचका अनुभव न करेगा! एक जाति दूसरी जाति पर इससे बढ़कर अन्याय और क्या कर सकती है? इतने पर भी ये ऐंग्लो-इण्डियन अपनी नीचताका ढोल पीटते हुए नहीं शर्माते और यद्यपि ब्रिटिश-प्रजा भारतीयोंको इस तरह दुर्दशामें नहीं डालना चाहती, तथापि वे उन पर एक तो अत्याचार करते हैं और दूसरे, उन्हें अच्छा बतलाते हुए भी शर्म और हयाको पास नहीं फटकने देते। ऐसी निन्दनीय स्वीकारोक्ति शायद ही और कभी किसीने की होगी। भला उन्होंने किस मुंहसे यह कह डाला, कि वे अपने अधर्मानुमोदित शासनके प्रभावसे ही भारतमें प्लेग, अकाल और दरिद्रता-का राज्य स्थापित किये हुए हैं?

अभी उस दिन एक ऐंग्लोइण्डियन सैनिक अफसरने अपराधी यहूदियोंको भारतमें लाये जानेके विषयमें बातें करते हुए

इस बात पर घोर आपत्ति और क्रोध प्रकट किया था। उनका कहना था, कि उनके लाये जानेसे बेचारे भारतीय मज़दूरोंकी रोटी छिन जायँगी। पर हज़रतने यह भी तो सोचा होता, कि वे भी तो वैसे ही उठाऊ चूल्हे थे और भारतके निरङ्कुश शासनकी बदौलत वहाँ वालोंके सिरपर लाद दिये गये थे, जिससे न केवल एककी, बल्कि सैकड़ों-हज़ारोंकी रोटी छिन जाती है।

लार्ड मेयरने यह सभा करके बड़ा भारी काम किया है। इसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं। इससे दो बातें बड़ी महत्त्वपूर्ण निकलीं। पहली तो यह, कि बृटिश-प्रजाको भारतीयोंके दुःखका ध्यान है और यह उनकी सहायता करनेको तैयार है। दूसरी यह, कि उसने बृटिश-प्रजाको इस बातकी शिक्षा दी, कि उसके नियुक्त किये हुए नौकर भारतमें बड़ी बुरी तरहका शासन करते हैं और वहाँकी करोड़ों प्रजाको उस वस्तुसे वञ्चित किये हुए हैं, जिसे बृटिश-प्रजा त्रिभुवनकी सम्पदासे भी बढ़ कर मूल्यवान समझती है। वहवस्तु है—अपने शासनमें अपना मताधिकार। इसीके लिये तो बृटिश-प्रजाका इस संसारमें इतना मान है। यह अभी हमें अपनी बराबर कहती और समझती है; पर यह केवल कहने ही सुननेकी बात है; क्योंकि अभी तक तो हमारा बृटिश-प्रजाजनोंसे गुलाम और मालिकों कासा ही नाता है। इस बातकी ओर आपलोगोंका ध्यान आकृष्ट होना चाहिये।